अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, अंक : 12, 1-15 फरवरी 2021

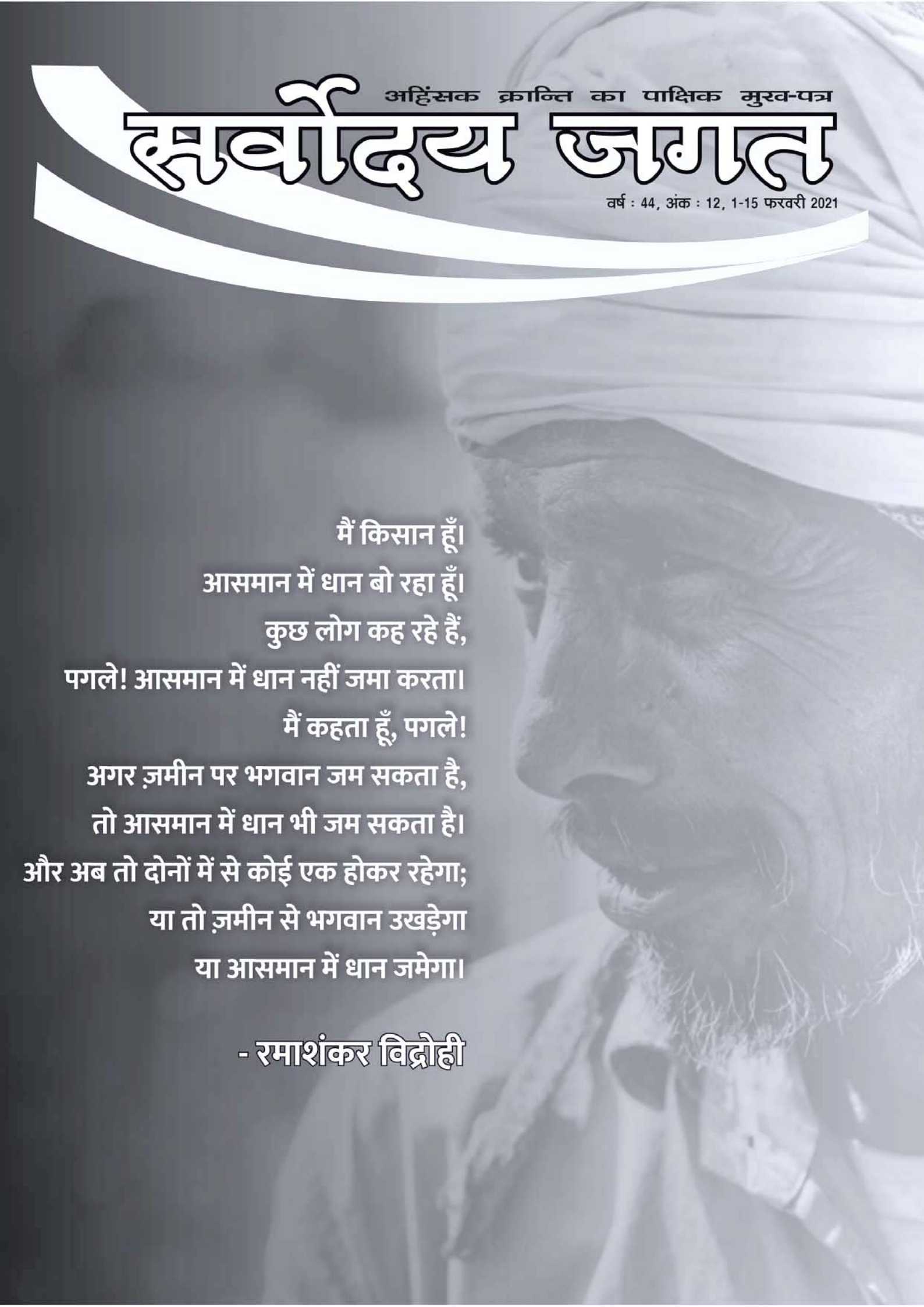

मैं किसान हूँ।
आसमान में धान बो रहा हूँ।
कुछ लोग कह रहे हैं,
पगले! आसमान में धान नहीं जमा करता।
मैं कहता हूँ, पगले!
अगर ज़मीन पर भगवान जम सकता है,
तो आसमान में धान भी जम सकता है।
और अब तो दोनों में से कोई एक होकर रहेगा;
या तो ज़मीन से भगवान उखड़ेगा
या आसमान में धान जमेगा।

- रमाशंकर विद्रोही

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 44, अंक : 12, 1-15 फरवरी 2021

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. किसानों ने ही बदला है देश का इतिहास... 3
3. दिल्ली को घेरे किसानों को खुशी-खुशी... 6
4. किसान आंदोलन महिलाओं को जीवन... 7
5. किसान आंदोलन के लिए गांधी के... 9
6. अर्णब गेट से लालकिले तक कारपोरेट... 10
7. खौफ़ के साए में एक लंबी अमेरिकी... 11
8. पाठ्यक्रमों से टैगोर को हटाने की बात... 12
9. राम ने अपने जीवन में वचनों का... 13
10. अखबारों से... 14
11. हमेशा कोई न कोई तुमसे बेहतर होता... 15
12. दुनिया का दिल जीतने वाला एक... 16
13. बाड़े के अंदर विकास... 17
14. जिला विकास परिषद चुनाव परिणामों... 18
15. गतिविधियां एवं समाचार... 19
16. दो कविताएं... 20

संपादकीय

गांव, खेत व किसान बचाने की मुहिम

आजादी प्राप्ति के बाद से ही गांव और किसान के आंदोलन चल रहे हैं। इन आंदोलनों की कई धाराएं रही हैं, जिनका नेतृत्व सर्वोदय के लोग, समाजवादी एवं साम्यवादी लोग करते रहे थे। आजादी प्राप्ति के लिए जब आमजन कई तरह के संघर्षों से जुड़े थे, तो संप्रदायवादी ताकतें जमींदारों, रजवाड़ों व अंग्रेजों की छत्रछाया में गांव की समस्याओं से जुड़े संघर्षों से दूर-दूर बनी रही थीं। इसी कारण आजादी प्राप्ति के बाद भी संप्रदायवादी ताकतें गांव, जमीन व किसान की समस्याओं से दूर-दूर बनी रहीं।

आजादी की लड़ाई के दौर में परिवर्तनशील ताकतों के बीच एक सर्व सहमति सी दीखती थी कि गांव, जमीन व किसान को सामंतवादी शोषण से भी मुक्त रखना होगा और संभावित पूंजीवादी (औपनिवेशिक या वैश्विक बाजारवादी) शोषण से भी मुक्त रखना होगा। आजादी के बाद आयी सरकारों ने भी इस दिशा में कुछ प्रयास किये थे, यद्यपि ये आधे-अधूरे व तमाम कमियों से युक्त थे। फिर भी इन प्रयासों का ही परिणाम था कि सामंतवादी शोषण से मुक्त रखने के लिए भूमि सुधार के कानून लाये गये—जमींदारी प्रथा खत्म की गयी, हदबंदी लागू की गयी, बटाईदारी व अन्य प्रकार से भूमि को पट्टे पर देने को गैरकानूनी बनाया गया, भूमिहीनों के बीच भूमि वितरण का कार्य किया गया, आदि आदि। लक्ष्य यह था कि एक परिवार जितनी भूमि जोत-बो सकता था, उसके पास उतनी ही भूमि रहे तथा सामंती व्यवस्था खत्म हो। किसी भी हालत में भूमि का संकेन्द्रण कुछ हाथों में हो सके, इस संभावना को सदा के लिए खत्म किया जा सके, यही मुख्य उद्देश्य था। इसलिए किसान आंदोलन सदैव इस बात के प्रति जागरूक रहे कि ऐसी नीतियां कभी न आयें, जिनके कारण भूमि का संकेन्द्रण सामंती हाथों में या पूंजीवादी हाथों में होने लगें और किसान अपनी खेती की जमीन से बेदखल होने लगे। वर्तमान कृषि कानून इस बात की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं, जिससे खेती की भूमि का पूंजीवादी ताकतों के हाथों में संकेन्द्रण हो सके।

इसी प्रकार गांव, जमीन व किसान को पूंजीवादी बाजार के चंगुल से बचाने तथा गरीबों की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए नीतियों का एक फ्रेमवर्क बनाया गया। इसके अंतर्गत कृषि उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने के लिए एक संस्था बनायी गयी, इस मूल्य पर खरीद हो सके, इसके लिए कानून के तहत मंडियों/मंडी परिषदों की शृंखला खड़ी की गयी, खरीदे गये अनाज के भंडारण के लिए भारतीय खाद्य नियम (Food corporation of India) का निर्माण किया गया तथा गरीबों को उचित मूल्य पर अनाज मुहैया कराया जा सके, इसके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) का जाल देश भर में स्थापित किया गया। इनके अलावा बिजली, सिंचाई का पानी, उर्वरक, ऋण सुविधा व अन्य संरचनात्मक व संस्थागत व्यवस्थाएं सार्वजनिक प्रकल्पों के माध्यम से विकसित की गयीं। इन व्यवस्थाओं में भी कई खामियां उजागर होती रहीं, जिनको दूर करने की मांग समय-समय पर जोर पकड़ती रही। कुछ नव निर्माण की भी बात उठती रही। किन्तु इन सबका लक्ष्य यह था कि गांव, जमीन व किसान को पूंजीवादी बाजार के शोषण से बचाये रखा जाये। लेकिन अगर इन व्यवस्थाओं की खामियों को उजागर कर, इन संस्थाओं को खत्म कर गांव, जमीन व किसान को पूंजीवादी बाजार के शोषण के दायरे में लाया जा रहा है, तो इसका पुरजोर विरोध होना चाहिए। विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) के निर्माण के बाद से ही इस बात का दबाव है कि कृषि क्षेत्र को वैश्विक बाजार के अंतर्गत खुला छोड़ दिया जाये। वर्तमान कृषि नीतियां विश्व व्यापार संगठन के दिशा-निर्देशों (Guide lines) के अनुपालन की दिशा में बड़ा कदम हैं।

गांव को वैश्विक पूंजीवादी बाजार के शोषण से बचाये रखने के लिए ग्राम स्वावलंबन व ग्राम स्वराज्य एक आवश्यक शर्त है। सर्वोदय धारा इस विचार का निरंतर प्रचार करती रही है। सरकार तथा दलीय राजनीति ने अपनी नीतियां यहां तक ही सीमित कर रखी थीं कि गांव, जमीन व किसान का सामंती या पूंजीवादी शोषण न हो, किन्तु विकल्प के रूप में लोकसत्ता के निर्माण का कार्य, ग्राम स्वावलंबन व ग्राम स्वराज्य के लक्ष्य के साथ आगे बढ़े, इसमें हम चूक गये। पूंजीवादी बाजार के शोषण के साथ फासिस्ट ताकतों के बढ़ने का यह एक मुख्य कारण रहा है। वर्तमान किसान आंदोलन को इन सारे पक्षों पर भी विचार करना पड़ेगा। सर्वोदय नेतृत्व इसमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

–बिमल कुमार

किसानों ने ही बदला है देश का इतिहास

❑ विजय शंकर सिंह

किसान आंदोलन अपनी रौ में है। सरकार का स्टैंड अब भी वही है कि बातचीत से ही रास्ता निकलेगा, पर न तो बातचीत हो रही है और न ही बातचीत की तारीख तय हो पा रही है। सब कुछ थमा हुआ है। पर किसानों के हौसले जस के तस हैं। थका कर कोई जनआंदोलन कभी भी तोड़ा नहीं जा सकता है, विशेषकर वह आंदोलन जो अपनी अस्मिता, संस्कृति और अस्तित्व पर आ पड़े खतरे के खिलाफ खड़ा हो गया हो। किसान आंदोलन 2020 एक ऐसा ही आंदोलन है। देश की 70% आबादी किसी न किसी तरह से कृषि या ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जुड़ी है। हम जैसे बहुत से लोग जो अब शहरों में आ बसे हैं, उनकी भी जड़ें गांवों और ग्रामीण संस्कृति में गहरे पैठी हैं। पंजाब से उठा यह आंदोलन धीरे धीरे हरियाणा, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों में पसरता हुआ पूरे देश में अलग अलग तरह से फैल गया है और अब सरकार की उपेक्षा, जिद, कील कांटो से भरी कंक्रीट की दीवारों और सड़क बंदी के बाद भी न तो हतोत्साहित हुआ है और न ही अपने लक्ष्य से डिगा है।

यह देश का न तो पहला किसान आंदोलन है और न ही अंतिम। देश में किसान आंदोलनों का एक लंबा और समृद्ध इतिहास रहा है। प्रायः यह समझा जाता है कि भारतीय समाज और इतिहास में समय-समय पर होने वाली उथल-पुथल में किसानों की कोई सार्थक भूमिका नहीं रही है, और किसान बदलाव की इन आंधियों से अलग रहे हैं, लेकिन यह धारणा, किसान आंदोलनों की समृद्ध परंपरा को देखते हुए सही नहीं है। स्वाधीनता संग्राम में देश भर में हुए किसान आंदोलनों के अहम योगदान और व्यापक जन जागरण में उनकी भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। स्वतंत्रता से पहले हुए अनेक किसान आंदोलनों ने ब्रिटिश राज को भी अपनी किसान विरोधी नीतियों को समय समय पर बदलने के लिये बाध्य कर दिया था।

ऐसे आंदोलनों में चंपारण का निलहे गोरों के खिलाफ किया गया किसान आंदोलन सबसे महत्वपूर्ण है। दक्षिण अफ्रीका से आते ही महात्मा गांधी ने चंपारण के राज कुमार शुक्ल नामक एक किसान के द्वारा जब बिहार के एक बेहद पिछड़े इलाके चंपारण में किसानों की व्यथा सुनी तो वे वहां गए। वहीं गांधी जी की पहली गिरफ्तारी होती है और वहीं भारत में ब्रिटिश हुकूमत ने गांधी जी की दृढ़ता और विनम्रता की पहली झलक भी देखी। हालांकि गांधी, साम्राज्य के लिये अनजान नहीं थे। दक्षिण अफ्रीका में उनके आंदोलनों से अंग्रेजी सरकार भलीभांति परिचित हो चुकी थी। चंपारण में भी गांधी का यह आंदोलन ब्रिटिश शोषण की व्यवस्था के खिलाफ अहिंसा और असहयोग की नीति पर आधारित था। चंपारण को भविष्य में होने वाले स्वाधीनता संग्राम की एक प्रयोगशाला के रूप में भी देखा जाता है। चम्पारण के किसानों से अंग्रेज बागान मालिकों ने एक अनुबंध करा लिया था, जिसके अंतर्गत किसानों को जमीन के 3/20वें हिस्से पर नील की खेती करना अनिवार्य था। इसे 'तिनकठिया पद्धति' कहते थे। 19वीं शताब्दी के अंत में रासायनिक रंगों की खोज और उनके प्रचलन से नील के बाजार समाप्त हो गए।

देश में नील पैदा करने वाले किसानों द्वारा पाबना विद्रोह, तेभागा आंदोलन, चम्पारण का सत्याग्रह और बारदोली के प्रमुख आंदोलन हुए थे, पर किसानों के आंदोलन या उनके विद्रोह की संगठित शुरुआत सन् 1859 से हुई थी। चूंकि अंग्रेजों की लूट खसोट पर आधारित नीतियों से किसान सबसे अधिक प्रभावित और पीड़ित हुए, इसलिए आजादी के पहले भी इन नीतियों के कारण, किसान समय समय पर आक्रोशित और आंदोलित होते रहे।

सन् 1857 का विप्लव असफल रहा, लेकिन इस विप्लव ने अंग्रेजों और भारतीयों को कुछ सीखें भी दीं। अंग्रेजों ने कम्पनी राज खत्म कर भारत को सीधे क्राउन के अंतर्गत ले लिया और देश लगभग 600 देसी रियासतों को छोड़, सीधे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया। रियासतें भी अपने स्थानीय प्रशासन के नहीं, वायसराय के अधीन ही थीं। उक्त असफल विप्लव के बाद सरकार की नीतियों के विरोध का नेतृत्व समय समय पर किसानों ने ही संभाला, क्योंकि अंग्रेजों और देशी रियासतों के सबसे बड़े आंदोलन, किसानों के शोषण के नतीजे थे। सच तो यह है कि स्वाधीनता के पूर्व जितने भी 'किसान आंदोलन' हुए, उनमें अधिकांश आंदोलन अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध थे। तत्कालीन समाचार पत्रों, जिनमें वर्नाक्यूलर प्रेस अधिक महत्वपूर्ण है, ने भी किसानों के शोषण, उनके साथ होने वाली सरकारी अधिकारियों की ज्यादतियों, पक्षपातपूर्ण व्यवहार और किसानों के संघर्ष को प्रमुखता से प्रकाशित किया।

आंदोलनकारी किसान चाहे तेलंगाना के हों या नक्सलवाड़ी के हिंसक लड़ाके, सभी ने जन आक्रोश को अभिव्यक्त कर इन आंदोलनों को आगे बढ़ाने में अपना अहम योगदान दिया था। सन् 1857 का विप्लव कुछ देशी रियासतों की मदद और कुछ उसके अनियोजित होने के कारण दबा तो दिया गया था, लेकिन देश में कई स्थानों पर आज़ादी के इस संग्राम की ज्वाला लोगों के दिलों में धधकती रही। इसी बीच अनेक स्थानों पर एक के बाद एक कई किसान आंदोलन, जैसे नील आंदोलन, तेभागा आंदोलन, चम्पारण और बारदोली सत्याग्रह, पाबना और मोपला विद्रोह की कथाएँ इतिहास में दर्ज हैं।

हालांकि किसानों का सबसे प्रभावी और व्यापक आंदोलन चंपारण का था, जो किसानों द्वारा ब्रिटिश नील उत्पादकों के खिलाफ बंगाल में सन् 1859-60 में किया गया। अपनी मांगों के संदर्भ में किसानों द्वारा किया जाने वाला यह आंदोलन उस समय का एक विशाल आंदोलन बन गया था। अंग्रेज अधिकारी बंगाल तथा बिहार के जमींदारों से भूमि लेकर बिना पैसा दिए ही किसानों को नील की खेती में काम करने के लिए विवश करते थे तथा नील उत्पादक किसानों को एक मामूली-सी रकम अग्रिम देकर उनसे करारनामा लिखवा लेते थे, जो बाजार भाव से बहुत कम दाम पर हुआ करता था। इस प्रथा को 'ददनी प्रथा'

कहा जाता था। एक प्रकार से कांट्रेक्ट फार्मिंग का यह पहला स्वरूप था।

दीनबंधु मित्र द्वारा 1860 में लिखा गया बांग्ला का प्रसिद्ध नाटक नील-दर्पण, निलहे किसानों की व्यथा का एक जीवंत दस्तावेज है। 1860 में जब यह नाटक प्रकाशित हुआ था, तब बंगाली समाज और शासकों, दोनों में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। जेम्स लॉग ने नील दर्पण का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया तो अंग्रेज सरकार ने उन्हें एक माह की जेल की सजा सुना दी। यह उन अंग्रेजों का कारनामा था, जो खुद को दुनिया भर में संसदीय लोकतंत्र और अभिव्यक्ति की आज़ादी का जनक मानते हैं। शोषक, शोषक ही रहता है और सत्ता का मूल चरित्र शोषक का ही है। अंग्रेज भी उस पनप रही पूंजीवादी व्यवस्था में इस चरित्र से अलग नही थे।

पहला महत्वपूर्ण किसान आंदोलन बंगाल में पबना के किसानों का था। 1873-76 में बंगाल की पबना नामक जगह पर किसानों ने जमींदारी शोषण के विरुद्ध विद्रोह किया था। पबना राजशाही राज की जमींदारी के अधीन था और यह वर्धमान राज के बाद सबसे बड़ी जमींदारी थी। उस जमींदारी के संस्थापक राजा कामदेव राय थे। पबना विद्रोह जितना अधिक जमींदारों के खिलाफ था, उतना सूदखोरों और महाजनों के विरुद्ध नहीं था। 1870-80 के दशक के पूर्वी बंगाल (अभी का बांग्लादेश) के किसानों ने जमींदारों द्वारा बढ़ाए गए मनमाने करों के विरोध में यह विद्रोह किया था। पबना में 1859 में कई किसानों को भूमि पर स्वामित्व का अधिकार दिया गया था। किसानों को मिले इस अधिकार के अंतर्गत किसानों को उनकी जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता था। लगान की वृद्धि पर भी रोक लगाई गई थी। कुल मिलाकर किसानों के लिए पबना में एक सकारात्मक माहौल था. कालांतर में जमींदारों का दबदबा पबना में बढ़ने लगा। जमींदार मनमाने ढंग से लगान बढ़ाने लगे. अन्य तरीकों से भी जमींदारों द्वारा किसानों को प्रताड़ित किया जाने लगा।

अंततः 1873 ई. में पबना के किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरुद्ध एक संघ बनाया और किसानों की सभाएं आयोजित कीं। कुछ किसानों ने अपने परगनों को जमींदारी नियंत्रण से मुक्त घोषित कर दिया और स्थानीय सरकार बनाने की चेष्टा की। उन्होंने एक सेना भी बनायी, ताकि जमींदारों का सामना किया जा सके। जमींदारों से न्यायिक रूप से लड़ने के लिए धन चंदे के रूप में भी किसानों द्वारा जमा किया गया। किसानों ने लगान देना भी कुछ समय के लिए बंद कर दिया। यह आन्दोलन धीरे-धीरे सुदूर क्षेत्रों में भी, जैसे ढाका, मैमनसिंह, त्रिपुरा, राजशाही, फरीदपुर और राजशाही आदि में फैलने लगा।

पबना विद्रोह एक शांत प्रकृति का आन्दोलन था। किसान शांतिपूर्ण तरीके से अपने हितों की सुरक्षा की माँग कर रहे थे. उनका आन्दोलन सरकार के विरुद्ध भी नहीं था, इसलिए पबना आन्दोलन को अप्रत्यक्ष रूप से सरकार का समर्थन प्राप्त हुआ। 1873 ई. में बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर कैंपबेल ने किसान संगठनों को उचित ठहराया. पर बंगाल के जमींदारों ने इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक रंग देना चाहा। एक अखबार 'हिंदू पेट्रियट' ने लिखा कि यह आन्दोलन मुसलमान किसानों द्वारा हिन्दू जमींदारों के विरुद्ध शुरू किया गया है। पर कुछ इतिहासकार मानते हैं कि इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक रंग देना इसलिए गलत है, क्योंकि पबना विद्रोह में हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्ग के किसान शामिल थे। आन्दोलन के नेता भी दोनों समुदाय के लोग थे, जैसे ईशान चन्द्र राय, शम्भू पाल और खुदी मल्लाह। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1885 का बंगाल काश्तकारी कानून पारित हुआ, जिसमें किसानों को कुछ राहत देने की व्यवस्था की गई।

उल्लेखनीय है कि किसान चेतना एक दो स्थानों तक ही सीमित नहीं रही, वरन देश के विभिन्न भागों में इसका व्यापक प्रसार हुआ। यह चेतना दक्षिण में भी फैलने लगी, क्योंकि महाराष्ट्र के पूना एवं अहमदनगर जिलों में गुजराती एवं मारवाड़ी साहूकार सारे हथकंडे अपनाकर किसानों का शोषण कर रहे थे। दिसंबर सन् 1874 में एक सूदखोर कालूराम ने किसान बाबा साहिब देशमुख के खिलाफ अदालत से घर की नीलामी का आदेश प्राप्त कर लिया। इस पर किसानों ने साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। इन साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन की शुरुआत सन् 1874 में शिरूर तालुका के करडाह गांव से हुई।

होमरूल लीग के कार्यकर्ताओं के प्रयास तथा मदन मोहन मालवीय के दिशा निर्देशन के परिणामस्वरूप फरवरी, सन् 1918 में उत्तर प्रदेश में 'किसान सभा' का गठन किया गया। यह उत्तर प्रदेश या तत्कालीन यूनाइटेड प्रविन्सेस का पहला किसान संगठन कहा जाता है। सन् 1919 के अंतिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आ गया। उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच एवं सीतापुर जिलों में लगान में वृद्धि एवं उपज के रूप में लगान वसूली को लेकर अवध के किसानों ने 'एका आंदोलन' नामक एक प्रभावी आंदोलन भी चलाया था। अवध किसान आंदोलन के नायकों में मदारी पासी एक विरले नायक थे। गरीब किसानों की बेदखली, लगान और अनेक गैर कानूनी करों से मुक्ति के लिए उन्होंने संगठित और विद्रोही आंदोलन चलाया था। जब दक्षिणी अवध प्रांत का उग्र किसान आंदोलन सरकार और जमींदारों के क्रूर दमन के कारण 1921 के मध्य में दबा दिया गया था तथा असहयोग आंदोलनकारियों द्वारा निगल लिया गया था, ठीक उसी समय मदारी पासी का 'एका आंदोलन' हरदोई जिले के उत्तरी और अवध के पश्चिमी जिलों में 1921 के अंत और 1922 के प्रारम्भ में चल रहा था।

मोपला लोग केरल के मालाबार क्षेत्र में रहने वाले इस्लाम धर्म में धर्मांतरित अरबी एवं मलयाली मुसलमान थे।अधिकांश मोपला छोटे किसान या व्यापारी थे, जो अपनी गरीबी और अशिक्षा के कारण थंगल कहे जाने वाले काजियों और मौलवियों के प्रभाव में थे। मोपला किसान मालाबार के हिन्दू नम्बूदरी एवं नायर उच्च जाति के भूस्वामियों के बटाईदार या आसामी काश्तकार थे। नम्बूदरी और नायर जैसे उच्च जाति के भूस्वामियों को शासन, पुलिस और न्यायालय से संरक्षण प्राप्त था। मोपला विद्रोह इसलिए सांप्रदायिक हो गया क्योंकि अधिकांश जमींदार या भूस्वामी हिन्दू थे और काश्तकार अधिकांश मुसलमान थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उन्नीसवीं सदी का मोपला विद्रोह ग्रामीण विद्रोह का विशिष्ट उदाहरण है, जिसकी जड़ें स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में थीं। यह मोपला विद्रोह का प्रथम चरण था।

द्वितीय मोपला विद्रोह 1920-21 में हुआ, जिसके कारणों में भी कृषिजन्य असंतोष था, लेकिन कालांतर में असहयोग आंदोलन

स्थगित किए जाने पर इस आंदोलन ने साम्प्रदायिक तथा राजनैतिक स्वरूप धारण कर लिया। 1921 में केरल के मालाबार जिले के काश्तकारों ने जमींदारों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। 15 फरवरी 1921 को सरकार ने इस क्षेत्र में निषेधाज्ञा घोषित कर कांग्रेस के नेता यू गोपाल मेनन, पी मोइनुद्दीन कोया, याकूब हसन तथा के माधवन नायर को गिरफ्तार कर लिया। मोपला विद्रोह की उग्रता को देखते हुए सरकार ने सैनिक शासन की घोषणा कर दी और परिणामस्वरूप मोपला विद्रोह को कुचल दिया गया।

इसी प्रकार पंजाब में 1871-72 में कूका लोगों (नामधारी सिखों) द्वारा एक सशस्त्र विद्रोह किया गया था। कूका लोगों ने पूरे पंजाब को बाईस जिलों में बाँटकर अपनी समानान्तर सरकार बना ली थी। कूका वीरों की संख्या सात लाख से ऊपर थी, लेकिन अधूरी तैयारी में ही विद्रोह भड़क उठा और इसी कारण वह दबा भी दिया गया। सिखों के नामधारी संप्रदाय के लोग कूका भी कहलाते हैं। इस पन्थ का आरम्भ 1840 ईस्वी में हुआ था। इसे प्रारम्भ करने का श्रेय सेन साहब अर्थात भगत जवाहर मल को जाता है। कूका विद्रोह के दौरान 66 नामधारी सिख शहीद हो गए थे। नामधारी सिखों की कुर्बानियों को भारत की आजादी की लड़ाई के इतिहास में 'कूका लहर' के नाम से अंकित किया गया है। सन 1872 में इस संगठन के संस्थापक भगत जवाहर मल के शिष्य बाबा रामसिंह ने अंग्रेजों का कड़ाई से सामना किया। कालान्तर में उन्हें कैद कर रंगून (अब यांगून) भेज दिया गया, जहां पर सन् 1885 में उनकी मृत्यु हो गई।

इसी प्रकार वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में रामोसी किसानों ने जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया। इसी तरह आंध्रप्रदेश में सीताराम राजू के नेतृत्व में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध यह विद्रोह हुआ, जो सन् 1879 से लेकर सन् 1920-22 तक छिटपुट ढंग से चलता रहा।

बिहार में एक अन्य किसान आंदोलन भी हुआ था, जिसे टाना भगत आंदोलन के नाम से जानते हैं। इस आन्दोलन की शुरुआत सन् 1914 में हुई थी। यह आन्दोलन लगान की ऊंची दर तथा चौकीदारी कर के विरुद्ध किया गया था। इस आन्दोलन के प्रवर्तक 'जतरा भगत' थे। 'मुण्डा आन्दोलन' की समाप्ति के करीब 13 वर्ष बाद 'टाना भगत आन्दोलन' शुरू हुआ। यह ऐसा धार्मिक आन्दोलन था, जिसके राजनीतिक लक्ष्य थे। यह आदिवासी जनता को संगठित करने के लिए नए 'पंथ' के निर्माण का आन्दोलन था। इस मायने में यह बिरसा मुण्डा आन्दोलन का ही विस्तार था। मुक्ति-संघर्ष के क्रम में बिरसा मुण्डा ने जनजातीय पंथ की स्थापना के लिए सामुदायिकता के आदर्श और मानदंड निर्धारित किए थे।

किसान आन्दोलनों के इतिहास में सन् 1946 का बंगाल का तेभागा आन्दोलन सर्वाधिक सशक्त आन्दोलन था, जिसमें किसानों ने 'फ्लाइड कमीशन' की सिफारिश के अनुरूप लगान की दर घटाकर एक तिहाई करने के लिए संघर्ष शुरू किया था। बंगाल का 'तेभागा आंदोलन' फसल का दो-तिहाई हिस्सा उत्पीड़ित बटाईदार किसानों को दिलाने के लिए किया गया था। यह बंगाल के 28 में से 15 जिलों में फैला, विशेषकर उत्तरी और तटवर्ती सुन्दरवन क्षेत्रों में। 'किसान सभा' के आह्वान पर लड़े गए इस आंदोलन में लगभग 50 लाख किसानों ने भाग लिया और इसे खेतिहर मजदूरों का भी व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

आंध्रप्रदेश का तेलंगाना आन्दोलन जमींदारों एवं साहूकारों के शोषण की नीति के खिलाफ सन् 1946 में शुरू किया गया था। सन् 1858 के बाद हुए किसान आन्दोलनों का चरित्र पूर्व के आन्दोलनों से अलग था। अब किसान बगैर किसी मध्यस्थ के स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ने लगे। इनकी अधिकांश मांगें आर्थिक होती थीं। किसान आन्दोलन ने राजनीतिक शक्ति के अभाव में ब्रिटिश उपनिवेश का विरोध नहीं किया। किसानों की लड़ाई के पीछे उद्देश्य व्यवस्था-परिवर्तन नहीं था, लेकिन इन आन्दोलनों की असफलता के पीछे किसी ठोस विचारधारा, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों का अभाव था।

एक अनोखे आंदोलन, बिजोलिया किसान आंदोलन का भी उल्लेख मिलता है। यह 'किसान आन्दोलन' भारत भर में प्रसिद्ध रहा, जो मशहूर क्रांतिकारी विजय सिंह पथिक के नेतृत्व में चला था। बिजोलिया किसान आन्दोलन सन् 1847 से प्रारंभ होकर करीब आधी शताब्दी तक चलता रहा। किसानों ने जिस प्रकार निरंकुश नौकरशाही एवं स्वेच्छाचारी सामंतों का संगठित होकर मुकाबला किया, वह इतिहास बन गया।

आंदोलनों के साथ साथ किसान संगठन भी अस्तित्व में आये। सन् 1923 में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने 'बिहार किसान सभा' का गठन किया। सन् 1928 में 'आंध्र प्रान्तीय रैय्यत सभा' की स्थापना एनजी रंगा ने की। उड़ीसा में मालती चौधरी ने 'उत्कल प्रान्तीय किसान सभा' की स्थापना की। बंगाल में 'टेनेंसी एक्ट' को लेकर सन् 1929 में 'कृषक प्रजा पार्टी' की स्थापना हुई। अप्रैल, 1935 में संयुक्त प्रांत में किसान संघ की स्थापना हुई। इसी वर्ष एनजी रंगा एवं अन्य किसान नेताओं ने सभी प्रान्तीय किसान सभाओं को मिलाकर एक 'अखिल भारतीय किसान संगठन' बनाने की योजना बनाई।

चंपारण के बाद गांधीजी ने सन् 1918 में खेड़ा किसानों की समस्याओं को लेकर आन्दोलन शुरू किया। खेड़ा गुजरात में स्थित है। खेड़ा में गांधीजी ने अपने प्रथम वास्तविक 'किसान सत्याग्रह' की शुरुआत की। खेड़ा के कुनबी-पाटीदार किसानों ने सरकार से लगान में राहत की मांग की, लेकिन उन्हें कोई रियायत नहीं मिली। गांधीजी ने 22 मार्च, 1918 को खेड़ा आन्दोलन की बागडोर संभाली। उनके अन्य सहयोगियों में सरदार पटेल और इन्दुलाल याज्ञनिक थे।

सूरत (गुजरात) के बारदोली तालुका में सन् 1928 में किसानों द्वारा 'लगान' न अदायगी का आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन में केवल 'कुनबी-पाटीदार' जातियों के भू-स्वामी किसानों ने ही नहीं, बल्कि सभी जनजाति के लोगों ने हिस्सा लिया। इसी आंदोलन के बाद गांधी जी ने वल्लभभाई पटेल को पहली बार सरदार कह कर सम्बोधित किया और सरदार सच में स्वाधीनता संग्राम के सरदार ही सिद्ध हुए।

इतिहास बदलने वाले इन आंदोलनों के बारे में हम सबको जानना चाहिए। भीड़ और जनांदोलनों ने सत्ता की धारा को बदला है, तानाशाहों को भूलुंठित किया है और हर वह सरकार विनाश को प्राप्त हुई है, जो ठस, अहंकारी और असंवेदनशील रही है। इस नियम का अपवाद भी नहीं मिलता है। ❑

दिल्ली को घेरे किसानों को ख़ुशी-ख़ुशी उनके खेतों की ओर लौटाया जाए

❑ केशव शरण

किसानों के आंदोलन के तीस दिन बाद रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह कह रहे थे कि 'एक-दो साल किसान कृषि क़ानूनों को अपनाकर देखें। अगर उन्हें लगे कि क़ानून लाभकारी नहीं हैं तो जो भी संशोधन ज़रूरी होगा, उसे किया जायेगा।' अगर ऐसा ही है तो जब संसद में यह बिल पास करवाया जा रहा था, तब इसमें यह क्यों नहीं जोड़ा गया कि यह क़ानून परीक्षण के लिए है? जब दो साल बाद किसानों की आर्थिक स्थिति, लाभ और समस्याओं के मद्देनज़र इसमें संशोधन किया जायेगा तो ऐसी क्या जल्दी थी राज्यसभा में संवैधानिक नियमों और मर्यादाओं के विरुद्ध जाकर बिल पास करवाने की? बहुत-से बिल हैं, जो आज भी पेंडिंग पड़े हैं। ऐसे बिल की किसानों द्वारा मांग ही कहां थी? किसान जो मांगते हैं, वह तो उन्हें नहीं दिया जाता और जो वे नहीं मांग रहे हैं, उसे लाभकारी बताकर उन पर लादा जा रहा है। रक्षा मंत्री अच्छे सेल्स मैनेजर हैं कि ले जाओ यह चीज़ और पहले इस्तेमाल करो, फिर विश्वास करो। पूरी गारंटी है, माल ठीक नहीं होगा तो वापस कर देना।

उधर गृहमंत्री अमित शाह बोल रहे हैं - 'मोदी के रहते कोई किसानों की ज़मीन नहीं छीन सकता।' क्या ऐसी बात हमने पहले कभी सुनी है कि किसी भी सरकार के किसी भी गृहमंत्री ने कभी यह कहा हो कि उसके प्रधानमंत्री के रहते कोई किसानों की ज़मीन नहीं छीन सकता? आज़ादी के तिहत्तर सालों के बाद ऐसा दावा करने की क्यों आवश्यकता पड़ रही है? ऐसी हवाई, थोथी और भावुक बातें जनता ने बहुत सुन लीं, जिसमें एक यह भी है कि मोदी के रहते कोई देश नहीं बेच सकता। गृहमंत्री के अनुसार जब मोदी नहीं रहेंगे तो देश बेच सकता है कोई! मोदी नहीं रहेंगे तो किसानों की ज़मीन किसानों से छीन सकता है कोई!

इधर ख़ुद प्रधानमंत्री मोदी कह रहे हैं कि जनता से नकारे गये लोग किसानों को गुमराह कर रहे है। हारे हुए विपक्षी दलों या नेताओं को जनता द्वारा नकार दिया गया कहना कौन-सा मार्गदर्शन है? चुनाव में हार-जीत तो होती ही है। जीते और हारे के संबंध में यही कहा जा सकता है कि जनता ने जीते को हारे पर वरीयता दी है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। और जब चुनाव भी सारे हथकंडे अपनाकर लड़ना और जीतना है तो इस हार-जीत के मायने भी क्या रह जाते हैं?

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेई की जयंती पर वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी महराजगंज के एक किसान रामगुलाब से पूछते हैं कि क्या ज़मीन जाने का डर है? इस पर किसान रामगुलाब कहते हैं—'नहीं'! आगे वे बताते हैं कि उन्होंने सौ किसानों के साथ मिलकर अपनी कम्पनी बनायी है। वे सब मिलकर खेती करते हैं और क्रय-क़रार के अंतर्गत गुजरात की एक कंपनी को सब उपज बेच देते हैं। इसमें किसानों को अच्छा मुनाफ़ा होता है। यह अच्छी बात है। इस अच्छी बात पर प्रधानमंत्री मोदी का ख़ुश होना भी अच्छी बात है। इसी के साथ ध्यान देने की बात यह भी है कि रामगुलाब यह सामुदायिक खेती किसान बिल पास होने के पहले से कर रहे हैं। किसानों और व्यापारियों में यह सहज समझौता है, जो सहज रूप से चल रहा है। इसमें असहजता तो नया कृषि क़ानून पैदा कर रहा है। इससे औद्योगिक कंपनियां फ़ायदे में हो जायेंगी और किसानों की अपनी कंपनियां घाटे में। किसानी के तरीक़े भी बदल जायेंगे।

होगा यह कि एक गांव केवल आलू उगा रहा है तो दूसरा गांव केवल गोभी। इससे गांवों की जो कृषि विविधता और थोड़ी-बहुत आत्मनिर्भरता थी, वह ख़त्म हो जाएगी। गांधी जी कहा करते थे कि भारत का हर गांव आत्मनिर्भर हो। हर गांव आत्मनिर्भर न भी हो तो ब्लॉक स्तर पर यह संभव था और आज भी संभव है। लेकिन शासकीय नीतियों ने इस दिशा में कभी काम ही नहीं किया।

आज हालत यह है कि हर क्षेत्र में पूंजीवाद ने अपना दबदबा जमा लिया है। इसी दबदबे के विस्तार में कल गांव-गांव मॉल खुल जायेंगे, जहां से अन्य सभी खाद्य वस्तुएं और सब्जियां वहां के किसान ख़रीदेंगे। इससे बची-खुची आत्मनिर्भरता के साथ ग्रामीण संस्कृति भी नष्ट हो जायेगी। कल औद्योगिक कंपनियां किसी गांव से किसी उपज विशेष को ख़रीदना बंद कर दें तो फिर क्या होगा? फिर यही होगा कि वहां के किसान फिर किसी और कंपनी के पास जायें और उससे उसकी ज़रूरत के अनुसार खेती का अनुबंध करें। ऐसी स्थिति में बार्गेनिंग की शक्ति किसके हाथ में होगी? इस दशा में क्या बिचौलिए नहीं कूद पड़ेंगे? क्या एक नया बिचौलिया वर्ग नहीं खड़ा हो जायेगा, जिसको ख़त्म करने की बात इस किसान बिल में की जा रही है?

एक बात यह भी है कि सरकार किसानों का इतना गन्ना ख़रीदती है, जिसका बकाया बहुत दिनों तक किसानों को चुकाया नहीं जाता। इसके लिए भी किसानों को धरना-प्रदर्शन करना होता है। कालांतर में यही कंपनियां भी करने लगेंगी। किसान जब औद्योगिक कंपनियों के शोषण-चक्र में फंस जायेंगे, तब प्रधानमंत्री मोदी क्या करेंगे? क्या वे औद्योगिक कंपनियों से कहेंगे कि भाई, किसानों का शोषण मत करो। शोषण करना है तो मेरा शोषण कर लो? लेकिन इससे होगा क्या?

अच्छा होगा कि सरकार द्वारा किसान बिल तुरंत वापस लिया जाए और सब कष्ट उठाकर दिल्ली को घेरे बैठे किसानों को ख़ुशी-ख़ुशी उनके खेतों की ओर लौटाया जाए। ❑

किसान आंदोलन महिलाओं को जीवन के पाठ पढ़ा रहा है!

❑ प्रदीपिका सारस्वत

मौजूदा किसान आंदोलन में महिलाओं की हिस्सेदारी पर 12 जनवरी को जब देश के मुख्य न्यायाधीश ने सवाल उठाया तो देश भर की महिलाओं और प्रगतिशील तबके ने सवाल पूछा कि क्या महिलाएं देश की नागरिक नहीं हैं? उन्हें आखिर क्यों देश की राजनीति से दूर रहना चाहिए?

25 साल की अमनदीप कौर 26 नवंबर से सिंघू बॉर्डर पर मौजूद हैं. आंदोलन में महिलाओं की हिस्सेदारी की बात पर उनका आक्रोश उनकी आवाज़ में दिखाई देता है. वे कहती हैं कि एक दिन पहले जब न्यायालय कह चुका है कि किसानों को विरोध प्रदर्शन का पूरा हक है तो अगले दिन चीफ़ जस्टिस किस बिनाह पर महिलाओं और बुज़ुर्गों को यहां न 'रखे जाने' की बात कर सकते हैं? रखा उस चीज़ को जाता है, जिसमें जान नहीं होती. चीफ़ जस्टिस को लगता है कि हम कोई सामान हैं. वे हमें किसान तो दूर, इन्सान भी नहीं मानते, ये शर्म की बात है.

आंदोलन में महिलाएं बड़ी संख्या में मौजूद हैं. वे अलग-अलग उम्र, अलग-अलग तबके से हैं. आंदोलन से जुड़ने की उन सबकी कहानियां बहुत अलग और दिलचस्प हैं. लुधियाना से आयीं 56 साल की बेहद हंसमुख जीत कौर आपको किसी बॉलीवुड फिल्म की ममतामयी मां की याद दिला देंगी. वे कहती हैं, 'साडे बच्चे यहां हैं तो मम्मा यहां क्यों ना होगी.' वे क़ानूनों के बारे में ज्यादा नहीं जानतीं, सिवाय इसके कि इन क़ानूनों की वजह से कल वे अपनी ही ज़मीन पर मज़दूर बन सकती हैं. उन्हें लगता है कि उनके और बाकी औरतों के साथ देने से आंदोलन की ताकत बनी रहेगी.

29 साल की सुखमनी किसान परिवार से नहीं हैं. एक महीने पहले सिंघू बॉर्डर पहुंचने से पहले वे चंडीगढ़ में हैदराबादी मोतियों के किसी शोरूम में काम करती थीं. वे बताती हैं, 'मैं फेसबुक और इंस्टाग्राम पर इस आंदोलन को फ़ॉलो कर रही थी. मुझे रोज़ लगता था कि मैं भी पंजाब से हूं, रोटी मैं भी खाती हूं, मुझे भी इस आंदोलन में हिस्सा लेना चाहिए. क्या हुआ जो मेरे पास ज़मीन नहीं है, अगर आज इन क़ानूनों की वजह से ये किसान अंबानी-अडानी के हाथ बिक जाएंगे तो कल हमारे पास भी कुछ नहीं बचेगा.' वे अपने परिवार की मर्जी के खिलाफ़ दो दिन के लिए आंदोलन में हिस्सा लेने आयी थीं, पर अब पिछले एक महीने से यहीं रह रही हैं।

सुखमनी की ट्रॉली के पास ही एक टेंट में 23 साल की राजवीर कौर रहती हैं. वे अपने पति और आठ महीने के बच्चे के साथ चंडीगढ़ से आयी हैं. उनकी कहानी भी सुखमनी जैसी ही है. उनके पति ऊबर चलाते थे. वे सिर्फ दो दिन के लिए यहां आए थे कि आंदोलन को देख सकें, पर यहां आने के बाद वापस ही नहीं गए. इतनी सर्दी और मुश्किल हालात में बच्चे के साथ रहना उन्हें नहीं खलता? वे कहती हैं कि यहां रह रहे लाखों लोग मेरा परिवार हैं. जब वे यहां रह सकते हैं तो मैं क्यों नहीं?

इस सवाल पर कि क्या पुरुषों की अगुवाई के बीच इस आंदोलन में औरतों को अपनी जगह बनाने में परेशानी का सामना करना पड़ रहा है, वरिष्ठ किसान नेता रविंदर पाल कौर कहती हैं, 'मैं किसान नेताओं की बैठकों में लगभग अकेली महिला होती हूं, मुझे कभी किसी ने रोका नहीं है. महिलाओं को अगर अपनी जिस्सेदारी निभानी है तो उन्हें अपनी जिम्मेदारी खुद समझनी पड़ेगी, उन्हें खुद घरों से निकलकर आंदोलनों तक पहुँचना पड़ेगा.'

यहां आने वाली बहुत सी अधेड़ और वृद्ध महिलाएं लगभग पहली बार किसी आंदोलन का हिस्सा बनी हैं. वे आंदोलनों के असर, उनके नियम-क़ानून नहीं जानतीं. मैं हरियाणा के कैथल से आई महिलाओं के एक समूह से मिलती हूँ. वे कहती हैं कि वे अपने पुरुषों का साथ देने आई हैं. वे नारे लगाती हैं और हंसते हुए कहती हैं कि वे नरेंद्र मोदी की बहन को ब्याह कर ही लौटेंगी. उन्हें यहां आए दो दिन हुए हैं. उनके समाज में किसी की बहन-बेटी को ब्याह कर लौटना प्रतीकात्मक तौर पर उस पर जीत हासिल करने जैसा माना जाता है.

पंजाब यूनिवर्सिटी से रंगमंच में एमए कर रहीं वीरपाल कौर यहां एक महीने से रह रही हैं. वे कहती हैं कि कैथल की ये औरतें कुछ दिन यहां और रहेंगी तो ऐसी बातें नहीं करेंगी. उनके भीतर बसी हुई पितृसत्ता ऐसी बातें करती है. लेकिन आंदोलनों में एक नयी संस्कृति पैदा होती है. वे बताती हैं, 'जब हम आए थे तो यहां हमने नारे लगते देखे, 'मुंडे सोने-सोने आए, मोदी तेरे परोने आए' ये ठीक नहीं था. हमने लड़कों को समझाया कि क्यों हमें बहन-बेटियों के बारे में ऐसी बातें करनी चाहिए. लड़कों ने समझा और ये नारे लगना बंद हो गए. अब भी जब नए लोग आते हैं, तो ऐसी बातें करते हैं, उनका ऐसा कोई इरादा नहीं होता लेकिन उनकी भाषा ऐसी होती है. आंदोलन उनकी भाषा सुधार देता है.'

टेंटों और लंगरों के बीच से गुज़रते हुए मैं लगभग हर महिला से बात करना चाहती हूँ. लेकिन लोग इस समय काफ़ी चौकन्ने हैं. वे जानते हैं कि उनके आंदोलन को बदनाम किए जाने की कोशिशें की जा रही हैं. 32 साल के मनबीर सिंह यहां 22 दिसंबर से रह रहे हैं. वे महिलाओं के एक टेंट की व्यवस्था संभालते हैं और सुरक्षा का ध्यान रखने वाली टीम का भी हिस्सा हैं. वे बताते हैं, 'यहां हर दिन नये लोग आते हैं. हमारी जिम्मेदारी है कि किसी सही बंदे को कोई तकलीफ़ न हो और किसी गलत बंदे को इधर एंट्री न मिल जाए.' वे टेंट में आने वाली हर महिला से आधार कार्ड और फ़ोन नंबर लेते हैं, तसल्ली होने पर ही उन्हें जगह देते हैं. वे पिछले दिनों आई एक लड़की का जिक्र करते हुए बताते हैं, 'उसके हाथ में चोट लगी हुई थी. पूछा तो बोली कि गिर गई थी. जब पूछा कि कहां, कैसे गिर गई थी तो उसके पास जवाब नहीं था. थोड़ा और पूछने पर उसने बताया कि घर से लड़ाई करके आई थी. दो दिन यहीं रही, फिर मैंने उसके परिवार का नंबर लिया और उन्हें बता दिया कि वह यहां है. वे लोग आकर उसे ले गए.'

मनबीर बताते हैं कि हम रातों को जागकर पहरा देते हैं, यहां हर लड़की सेफ़ महसूस करती है. वे कुछ घटनाओं का जिक्र करते हुए बताते हैं कि हमने कई ऐसे लोगों को पकड़ा है, जो आग लगाने की या चोरी करने की कोशिश कर रहे थे. वे कहते हैं कि जाट आंदोलन को ऐसे ही चोरी और हिंसा के ज़रिए खराब किया गया था.

सिर्फ पुरुष ही नहीं, कई महिलाएं भी टेंटों के प्रबंधन की जिम्मेदारी उठा रही हैं. नए लोगों का नाम-पता लेना, उन्हें गद्दे-कंबल देना, सुबह सब समेट कर अपनी जगह रखना, सफ़ाई, खाना, बड़े-बुज़ुर्गों की देखभाल, बच्चों का दूध, ऐसे तमाम काम है, जिनका उन्हें ध्यान रखना होता है. बीबी शरणजीत कौर इसी तरह एक टेंट की प्रबंधक हैं.

उन्हीं के टेंट में रहने वाली 30 साल की मनदीप कौर कुरुक्षेत्र से हैं. वे आंदोलन की महिलाओं के बारे में बताती हैं, 'बुज़ुर्ग महिलाएं 11 बजे सुबह से 11 बजे रात तक अनशन पर बैठती हैं. बाकी महिलाएं लंगरों और टेंटों की व्यवस्था संभालती हैं. यहां सब अपनी जिम्मेदारी समझते हैं, कोई भी अपना काम किसी और पर नहीं टालता.' मनदीप की बात वीरपाल की उस बात को मज़बूत करती है कि आंदोलनों में एक नई संस्कृति पैदा होती है. इन महिलाओं ने सिंघू बॉर्डर पर रहने वाले कमज़ोर तबके के बच्चों के लिए स्कूल की भी शुरुआत की है. दिन में तीन घंटें ये लोग बच्चों को पढ़ाते हैं.

मनदीप के साथ ही बैठीं बलदीप कौर काफ़ी समय से सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेती रही हैं. वे कहती हैं, 'महिलाओं की हिस्सेदारी किसी भी आंदोलन के लिए ज़रूरी है. जब हमारी हिस्सेदारी दुनिया की हर चीज़ में है, तो आंदोलन कुछ अलग तो नहीं.' वे बताती हैं कि आंदोलन में महिलाओं के होने की वजह से यहां सबकुछ बहुत शांतिपूर्ण ढंग से चल रहा है और सब सुरक्षित भी है, वरना सरकार हमारे पुरुषों से और कड़ाई से पेश आती. वे कहती हैं कि जिस तरह हम सब यहां रह रहे हैं, आप गौर से देखिए, आपको समाजवाद का एक छोटा रूप देखने को मिलेगा.

आंदोलन में हिस्सेदारी एक बात है और नीतियों के निर्माण में महिला की आवाज़ का, उसकी हिस्सेदारी का होना दूसरी बात. अक्सर देखा गया है कि महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी के बाद भी आंदोलनों के पूरे होने पर बनने या बदलने वाली नीतियों में महिलाओं की हिस्सेदारी नहीं होती. इस बारे में बात करने पर अधिकतर महिलाएं चुप्पी साध लेती हैं. वे अभी नीतियों के निर्माण में हिस्सेदारी तक नहीं पहुंची हैं, पर यह सवाल उन्हें असहज करता है.

महिला किसान अधिकार मंच फ़ोरम की स्थापना से जुड़ी अर्चना से यही सवाल करने पर वे कहती हैं, 'आंदोलन में महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़ना ही अपने-आप में छोटी बात नहीं है. समाज के दूसरे स्तरों पर जिस तरह धीरे-धीरे महिलाओं की हिस्सेदारी और प्रभुत्व बढ़ रहा है, वक्त लगेगा पर उसका असर डिसीज़न मेकिंग में भी दिखेगा.' वे कहती हैं कि उन सामाजिक आंदोलनों में महिलाओं की ज्यादा मज़बूत हिस्सेदारी है, जो सीधे तौर पर आर्थिक मुद्दों से जुड़े हुए नहीं हैं, जैसे कि महिला सुरक्षा, शराब बंदी या फिर नदियों, जंगलों से जुड़े आंदोलन. जमीन और पैसे को महिलाओं का क्षेत्र नहीं माना जाता, पर अब सतही जुड़ाव से ही सही, महिलाएं और पुरुष दोनों ही जान रहे हैं कि अब बहुत लंबे समय तक महिलाएं इन क्षेत्रों से दूर नहीं रहेंगी.

जो महिलाएं आंदोलन का हिस्सा हैं, वे एक बदलाव के साथ घर लौटेंगी. पार्टिसिपेशन से भी एक समझ बनती है. जो महिलाएं अपने घरों में बैठकर इन महिलाओं को टीवी पर देख रही हैं, उन्हें भी ये समझ में आ रहा है कि खेती-किसानी उनका भी काम है, उनका भी हक है. आज इन महिलाओं के पास कहने के लिए बहुत कुछ नहीं है, पर हम देख सकते हैं कि आने वाले समय में ऐसा नहीं रहेगा.

चाहे अर्चना या रविंदर पाल कौर जैसी महिलाएं हों, जो सालों से ज़मीन पर काम कर रही हैं या फिर अमनदीप या बलजीत जैसी युवा लड़कियां, जो पहली बार ज़मीन पर आकर आंदोलनों का हिस्सा बनी हैं, सभी को लगता है कि उनकी हिस्सेदारी सिर्फ इस एक आंदोलन तक सीमित नहीं रहेगी, एक लहर की तरह पूरे समाज को छुएगी और उसे थोड़ा ही सही, पर हमेशा के लिए बदल डालेगी. *-सत्याग्रह*

किसान आंदोलन के लिए गांधी के सबक

❑ राजनारायण

भारत में किसान आंदोलनों का इतिहास देखें तो अंग्रेजों के विरुद्ध शुरुआती संघर्ष किसानों ने ही शुरू किए थे। यद्यपि स्वतंत्रता संग्राम में राजे रजवाड़ों की अपनी संप्रभुता और सत्ता बचाने की लड़ाइयों को अधिक महत्व मिला तथा शुरुआत में कांग्रेस के नेतृत्व में आजादी के लड़ाई के योगदान को छोड़ दें तो गांधी के नेतृत्व संभालते ही हमारी आजादी का आंदोलन एलीट वर्ग की जकड़ से मुक्त होकर किसानों की अस्मिता, आत्मनिर्भरता और आत्म निर्णय का आंदोलन बन गया था। चंपारण और बारदोली का सत्याग्रह इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

गांधी जी के नेतृत्व की एक खूबी थी, जो उन्हें अन्य समकालीन नेताओं से बहुत आगे रखती है। गांधी न केवल जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक कर रहे थे, बल्कि उनकी मानसिकता को आजादी की जिम्मेदारी संभालने के लिए भी तैयार कर रहे थे और इसी कारण भारतीय कृषि समाज की कमजोरियों पर उनका सीधा निशाना था। कृषि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, इसे उन्होंने बखूबी समझा, इसलिए ग्राम स्वराज्य के मॉडल को सामने रखा और उस पर लगातार कार्य किया। एक राजनीतिक आंदोलन से दूसरे राजनीतिक आंदोलन के बीच के गैप को उन्होंने समाज की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए इस्तेमाल किया और कार्यकर्ताओं को नित्य नए कार्यक्रम दिए। गांधी के नेतृत्व की सबसे बड़ी खूबी अराजनीतिक व्यक्तित्व तथा साधारण गृहस्थ को भी कार्यक्रमों के जरिए आंदोलन से जोड़कर रखने की थी।

यही नहीं, उनके अन्दर युवा पीढ़ी के जोश, जुनून और जज़्बे को मिलने वाली आजादी को अक्षुण्ण बनाए रखने के काम में लगा देने की विराट कल्पनाशीलता भी थी। उनकी कोई भी मांग उनकी अपनी या कांग्रेस नेतृत्व की मांग बनकर ब्रिटिश संसद तक नहीं पहुंचती थी, बल्कि जन सामान्य से विस्तृत वार्तालाप और संवाद को लिपिबद्ध कर उसे तत्कालीन सत्ता तक पहुंचाने की एक सघन व्यवस्था रहती थी।

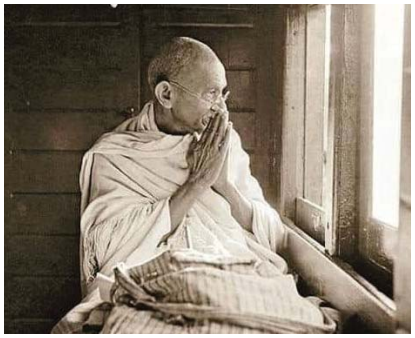

मुझे लगता है कि इस आंदोलन के नेतृत्व को गांधी विचार की पृष्ठभूमि से निकले कुछ सुझावों पर गौर करना चाहिए। सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण बात यह कि आंदोलन के बारे में जो भी कुछ लिखा और कहा जा रहा है, वह राष्ट्रभाषा हिंदी में हो और देवनागरी लिपि में लिखा जाए। अलग-अलग राज्यों के लिए उनकी मातृभाषा भी इस्तेमाल की जा सकती है, पर पूरे आंदोलन के दौरान जो प्ले कार्ड और बैनर आदि दिख रहे हैं, वह गुरुमुखी में हैं, जिसे अन्य कोई समझ नहीं पा रहा और इस भ्रम का शिकार हो रहा है कि जैसे आंदोलन सिर्फ पंजाब के सिख किसानों का है।

यह मार्च सरकार के कान में किसानों की बात पहुंचाने के लिए 'दिल्ली चलो' के नारे के साथ शुरू हुआ था, पर केंद्र सरकार द्वारा दिल्ली के बॉर्डर बंद कर दिए जाने के कारण जिस ढंग से दिल्ली की किलेबंदी हो गई है और वहां से जिस अंदाज में खबरें प्रेषित हो रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि हम 18वीं शताब्दी का कोई युद्ध लड़ रहे हैं। आंदोलन के अगले फेस के लिए सड़कों पर धरना देना ही पर्याप्त नहीं है, अब ज्यादा जरूरी है कि किसानों की टोलियां प्रचारकों के रूप में देश के कोने कोने तक पहुंच जानी चाहिए और उन्हें न केवल इन तीन कानूनों के पीछे की नीयत को किसानों तक पहुंचाना चाहिए, बल्कि देश के अलग-अलग क्षेत्र के किसानों की अलग-अलग समस्याओं को लिपिबद्ध कर सरकार से नया कानून बनाने की मांग करनी चाहिए, जिससे इस आंदोलन पर पंजाब के सिख आंदोलनकारियों का ठप्पा लगना बंद हो।

सरकार यह बिल वापस ले लेगी और किसानों की समस्याएं हल हो जाएंगी, ऐसा सोचना सही नहीं होगा। किसानों और बुद्धिजीवियों को पूरे देश के किसानों और किसानी की समस्याओं को हल करने का एक मास्टर प्लान बनाने में जुट जाना चाहिए, जिसे सरकार के समक्ष रखकर उसे कानून का रूप देने की मांग होनी चाहिए। याद रखें, लोकतंत्र में कानून थोपे नहीं जाते, बल्कि जनता की मांग पर जनता के द्वारा स्वयं पर अध्यारोपित होते हैं।

अगर सरकार यह बिल वापस नहीं लेती तब किसान की क्या रणनीति होगी और वह इन बिलों के प्रावधानों को कैसे निष्क्रिय करेगा, इसकी पूरी रणनीति बनाने का समय है। जब तक विरोधी को आपकी प्रतिरक्षा की सामर्थ्य का पता नहीं होता, वह आप को हल्के में ही लेता रहता है।

इस देश में कई बार किसान आंदोलन खड़े हुए और थोड़ी बहुत सफलता हासिल कर खत्म हो गए। हर बार नए सिरे से किसानों को एकजुट करना पड़ा। इस आंदोलन से हमें सबक लेना चाहिए। किसान को कोई ऐसा मंत्र जैसा कार्यक्रम देने की जरूरत है, जिसे वह अपने रोज की दिनचर्या का अंग बना ले और उसकी सक्रियता और जागरूकता को देखकर कोई जल्दी उसके हितों से खिलवाड़ करने की न सोचे, इस बारे में भी किसान बुद्धिजीवियों को सोचने विचारने और इसका हल तलाशने की जरूरत है।

गांधीजी ने पूरे आंदोलन और आंदोलनकारियों को देश के आम नागरिक की तरह रहने के लिए संकल्पबद्ध होने की प्रेरणा दी थी, जबकि इस आंदोलन में खान-पान का वैभव, आंदोलनकारियों की दीर्घकालीन तैयारियां प्रदर्शित करने की जगह, मजाक का विषय बनता जा रहा है। भारतीय अध्यात्म और गांधी-आंदोलन की एक बहुत बड़ी पूंजी आत्मशुद्धि के लिए उपवास थी। बेशक सब लोग उपवास न करें, पर देश के लगभग हर हिस्से में अपनी एवं सरकार की आत्मशुद्धि के लिए उपवास की एक श्रंखला भी शुरू की जा सकती है, इसके दूरगामी प्रभाव होंगे। ❑

अर्णब गेट से लालकिले तक कारपोरेट के हरम की साजिशों के कुहासे में गणतंत्र

❑ बादल सरोज

अर्णब गोस्वामी और टीवी चैनल्स की लोकप्रियता जांचने वाली एजेंसी बार्क के प्रमुख पार्थो दासगुप्ता के बीच हुई व्हाट्सएप्प चैट्स के जो दस्तावेज मुम्बई पुलिस ने अदालत में पेश किये हैं, वे सिर्फ देश की सुरक्षा के हिसाब से ही चिंताजनक और चौंकाने वाले नहीं हैं, वे डराने वाले भी हैं। वे भाजपा द्वारा इस देश के गणतंत्र को भुरभुरा और असुरक्षित बनाने और संविधान की मर्यादा को खण्डित करने वाले भी हैं। किसी के द्वारा आज तक उनका खंडन न करना, जहां उनकी अकाट्य सत्यता का सबूत है, वहीं सत्ता और सरकार की ओर से इन स्तब्धकारी खुलासों पर चुप्पी साध लेना लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में निहित जवाबदेही से मुकरना और अपने चाकरों के जुर्मों में आपराधिक हिस्सेदारी के उत्तरदायित्व से कन्नी काटना है। पिछली एक सदी में इससे भी छोटे मामलों के सामने आने पर दुनिया भर की सरकारों को इस्तीफे तक देने पड़े हैं। मगर मौजूदा सरकार ढिठाई और निर्लज्जता के मामले में अब तक की सबसे कट्ठर सरकार है। इससे ऐसी उम्मीद करना किसी भेड़िये से शाकाहारी होने की उम्मीद करने से भी ज्यादा है।

इन व्हाट्सएप्प चैट्स में मोदी सरकार द्वारा गुजरे वर्षों में लिया गया ऐसा शायद ही कोई गोपनीय तथा टॉप सीक्रेट फैसला हो, जिसकी अग्रिम जानकारी या पूर्व सूचना अर्णब गोस्वामी के पास नहीं थी। वह चाहे वेंकैया नायडू को उपराष्ट्रपति बनाने का फैसला हो, स्मृति ईरानी को सूचना प्रसारण मंत्रालय सौंपे जाने की खबर हो, मोदी और अमित शाह के बाद तीसरा बन्दा अर्णब ही था, जिसके साथ चौथा बनने वाला पार्थो था, जो कुछ हजार डॉलर और पीएम तथा अमित शाह को साधने के वचन के एवज में उसके चैनल की रेटिंग बढ़ाने के लिए धाँधली दर धांधली किये जा रहा था।

इन चैट्स का सबसे हैरान और विचलित करने वाला हिस्सा है फर्जी राष्ट्रवाद उभारने के लिए पुलवामा में हुई सैनिकों की शहादत पर उल्लास से कूदना, लार टपकाना और चुनावों में मोदी की पगलाने वाली जीत की उम्मीदों पर बलिहारी जाना। यह वह अमानवीय किलर इंस्टिंक्ट है, जिसे राष्ट्रवाद का मुलम्मा चढ़ाकर सैनिकों की लाशों के ढेर को सत्ता तक पहुँचने की सीढ़ी बनाने में कोई गुरेज नहीं है। बालाकोट जैसे अतिगोपनीय फैसलों की पूर्व सूचना अर्णब के पास होना और उसका आगे तक पहुँचना, कश्मीर से धारा 370 हटाने की जानकारी पहले से इसे होना, ऐसी ही उन हजारों सूचनाओं में से कुछ हैं, जो इन व्हाट्सप्प चैट्स में सामने आयी हैं।

साफ़ है कि अर्णब तक इन बातों को पहुंचाने वाला कोई छुटका बाबू या कम्प्यूटर ऑपरेटर नहीं है, खुद श्रीमुख से यह जानकारियां रिसीं और टपकी हैं। यह सिर्फ गोपनीय और अति-गोपनीय सूचनाओं की सार्वजनिकता और उसमें निहित खतरों और आशंकाओं का मामला नहीं है। यह जनभावनाओं को भटकाने, भड़काने और इस तरह गणतंत्र के बुनियादी तत्वों को दरकाने का मामला है। यह फ़ाउल प्ले भर नहीं है, यह कारपोरेट के हरम का ऐसा धतकरम है, जिसमें देश और जनता के विरुद्ध साजिशों और षड्यंत्रों का जाल बुना और बिछाया जाता है। कार्पोरेटी हिंदुत्व की विनाश यात्रा का रास्ता हमवार करने के लिए इस जाल का मखमली कालीन बिछाया जाता है।

26 जनवरी के दिन ठीक इसी तरह की साजिशों को अमल में लाकर किसानों के ऐतिहासिक आंदोलन को बदनाम करने और उसे कठघरे में खड़ा करने की कोशिशें की गयी हैं। आजादी के बाद पहली बार इतनी भारी तादाद में किसानों की अगुआई में देश की जनता सभी 700 जिलों में तिरंगे झण्डे लेकर गणतंत्र दिवस की परेड करने निकली। ढाई हजार से ज्यादा स्थानों पर लाखों ट्रैक्टर्स तिरंगा झण्डा लगाकर आजादी और गणतंत्र की हिफाजत की अलख जगाने निकले। निहायत सकारात्मक तरीके से अभिव्यक्त हो रहे इस अभूतपूर्व जनाक्रोश का आदर करने और उसे सम्मानजनक जगह देने के बजाय कारपोरेट के हरम में बैठे मीडिया ने दिल्ली की दो अपवाद घटनाओं को तूल देकर भारतीय जनता के इस प्रतिरोध उत्सव के खिलाफ युद्ध सा ही छेड़ दिया।

हालांकि शाम तक यह उजागर भी हो गया कि ये दोनों ही घटनाएं अंजाम देने वाले सत्ता पार्टी से जुड़े हुए करीबी लोग थे, जो न तो किसान थे, न ही सिख। इनमें से एक–झण्डा वाले दीप सिद्धू–की तस्वीरें खुद मोदी के साथ सार्वजनिक हो चुकी हैं। पुलिस बंदोबस्त के बीच इसके वहां तक पहुँचने और पुलिस वालों की निष्क्रिय निगरानी के बीच झण्डा फहराने की पहेली का समाधान मोदी के साथ खिंचे इसके फोटो से हो जाता है। टेलीविज़न मीडिया जिस तरह लहक लहक कर इन दो अपवाद घटनाओं को अतिरंजित रूप में दोहरा रहा था और बाकी देश भर में हुई कार्यवाहियों को छुपा रहा था–वह क्यों और कैसे, किसलिए और किसके लिए था, इसकी कुंजी अर्णब-गेट के ताले की चाबी से मिलान करके समझी जा सकती है।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सरदार पटेल को 14 मार्च सन् 1948 को भेजे एक पत्र में लिखा था कि *'मुझे बताया गया है कि आरएसएस के लोगों ने झगड़ा पैदा करने के लिए मंसूबा बनाया है, उन्होंने बहुत सारे लोगों को मुसलमान पहनावा पहनाकर, मुसलमान जैसा दिखने वालों के रूप में हिन्दुओं पर आक्रमण करने की योजना बनाई है, ताकि झगड़ा पैदा हो और हिन्दू भड़क जाएं। इसी के साथ इनके साथ कुछ हिन्दू होंगे जो मुसलमानों पर हमला करेंगे ताकि मुसलमान भड़क जाएं।'*

तब यह गिरोह सिर्फ हिन्दू-मुसलमान खेल रहा था, आज इसके निशाने पर मजदूर और किसान हैं, लोकतंत्र और संविधान है, असल में तो पूरा हिन्दुस्तान है, इसलिए अब इसकी साजिशें नए नए आयाम लेती जा रही हैं। हिटलर की तरह जर्मन संसद पर नकली हमले जैसी पटकथाएं भी भारत में मंचित करने की कोशिशें जारी हैं। मंशा स्पष्ट है और वह यह है कि देश का जो होना है सो हो, कारपोरेट की लूट में रत्ती भर अवरोध नहीं आना चाहिए।

उनके लिए दिक्कत की बात यह है कि जनता अभी भी इनके उकसावे या भुलावे में नहीं आ रही है। वह सब समझ भी रही है और इस कुहासे को चीरने के लिए एकजुट भी हो रही है। यही एकता इन्हें सबसे ज्यादा डराती है। जरूरत इन्हें और भी ज्यादा डराने और सभ्यता की बसाहटों से बाहर खदेड़ आने की है, मतलब एकता और अधिक बढ़ाने की है। आने वाले दिन इसी चुनौती से जूझने और इस मकसद को हासिल करने के होंगे, यह तय है।

(लेखक अखिल भारतीय किसान सभा के संयुक्त सचिव हैं।) ❑

ख़ौफ़ के साए में एक लम्बी अमेरिकी प्रतीक्षा का अंत!

❑ श्रवण गर्ग

बीस जनवरी की रात लगभग सवा दस बजे जब भारत के नागरिक सोने की तैयारी कर रहे थे, वाशिंगटन में दिन के पौने बारह बज रहे थे। यही वह क्षण था, जिसकी अमेरिका के करोड़ों नागरिक रात भर से प्रतीक्षा कर रहे थे। उस कैपिटल हिल पर जहां सिर्फ दो सप्ताह पहले (छह जनवरी) अमेरिकी इतिहास की अभूतपूर्व हिंसा घट चुकी थी, अठहत्तर साल के जो बाइडेन अमेरिका के 46वें राष्ट्रपति के रूप में शपथ लेने के बाद देशवासियों को सम्बोधित कर रहे थे। वे डोनाल्ड ट्रम्प की जगह ले रहे थे, जो 'किसी न किसी रूप में' सत्ता में फिर वापसी की धमकी देते हुए वाशिंगटन से रवाना हो चुके थे। उन्हें विदा देने के लिए उनकी ही पार्टी के उप-राष्ट्रपति पेंस हवाई अड्डे पर मौजूद नहीं थे। पेंस ने बाइडेन-हैरिस के शपथ समारोह में उपस्थित रहना ज्यादा नैतिक समझा। इसीलिए जब पेंस शपथ-स्थल के मंच पर पहुँचे तो तालियों से उनका अभिवादन किया गया।

बाइडेन और कमला हैरिस के शपथ समारोह में दोनों ही दलों के पूर्व राष्ट्रपति क्लिंटन, बुश और ओबामा मौजूद थे, लेकिन ट्रम्प नहीं थे। ट्रम्प का ख़ौफ़ कैपिटल हिल के प्रत्येक कोने और शपथ समारोह में उपस्थित हरेक चेहरे पर ढूँढ़ा और पढ़ा जा सकता था। इसकी गवाही वाशिंगटन डीसी की सूनी सड़कें और समारोह स्थल को घेर कर खड़े हज़ारों सुरक्षा गार्ड दे रहे थे।

अमेरिकी इतिहास में ऐसा पहले कभी नहीं देखा गया। अमेरिका ने अपने आपको इतना असुरक्षित और असहाय पहले कभी नहीं महसूस किया होगा, 'नाइन-इलेवन' की घटना के बाद भी। तब अमेरिका पर हमला बाहरी लोगों ने किया था। इस बार हमला भी घरेलू था और लोग भी जाने-पहचाने थे। बाइडेन के शब्दों में वह एक 'असभ्य युद्ध' था।

अपने पहले उद्बोधन में बाइडेन ने देशवासियों के साथ उन सभी चुनौतियों की चर्चा की, जो एक तानाशाह राष्ट्रपति उनके निपटने के लिए छोड़ गया है। ट्रम्प ने जब चार साल पहले शपथ ली थी, तब इसी मंच से अमेरिकियों को बताया था कि 'हमने दूसरे राष्ट्रों को तो धनवान बनाया पर हमारी अपनी सम्पदा, ताक़त और आत्मविश्वास क्षितिज पर गुम हो गया।' उन्होंने देश को यक़ीन दिलाया था कि 20 जनवरी 2017 को याद रखा जाएगा कि इस दिन अमेरिका के नागरिक अमेरिका के फिर से शासक हो गए। बाइडेन ने 20 जनवरी 2021 को बग़ैर नाम लिये बताया कि पिछले चार सालों में ट्रम्प ने देश को कहाँ पहुँचा दिया है। कोरोना के कारण हो चुकी चार लाख से ज्यादा मौतें, करोड़ों लोगों (लगभग तीन करोड़) की बेरोज़गारी,श्वेत उग्रवाद, हिंसा का माहौल और इन सब के बीच नागरिकों की नई सरकार से उम्मीदें।

बीस जनवरी दो हज़ार इक्कीस को वाशिंगटन में केवल सत्ता का शांतिपूर्ण तरीक़े से हस्तांतरण हुआ है। नागरिक-अशांति की आशंकाएँ न सिर्फ निरस्त नहीं हुईं हैं, बल्कि और पुख्ता हो गयी हैं। देश की जनता का एक बड़ा प्रतिशत अभी भी ट्रम्प का कट्टर समर्थक है। इनमें बहुसंख्या उन सवर्ण राष्ट्रवादी गोरों की है, जो सभी तरह के अल्पसंख्यकों को अपनी समृद्धि के लिए दुश्मन मानते हैं। हालांकि अपनी कैबिनेट में इन्हीं अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण स्थान देकर बाइडेन ने 'घरेलू आतंकियों' को संदेश देने की हिम्मत की है कि वे सवर्ण हिंसा को परास्त करके रहेंगे। कहा नहीं जा सकता कि अपनी स्वयं और कमला हैरिस की वामपंथी छवि के चलते वे कितना सफल हो पाएँगे।

रिपब्लिकन पार्टी के सांसद भी इन ट्रम्प समर्थकों से ख़ौफ़ खाते हैं। वे जानते हैं कि अब ट्रम्प ही पार्टी हैं और पार्टी ही ट्रम्प है। वे अपने पूर्व राष्ट्रपति का साथ छोड़ने को इसलिए तैयार नहीं हैं कि उनका राजनीतिक भविष्य अब ट्रम्प और उनके भक्तों के समर्थन की कठपुतली बन गया है। पूर्व राष्ट्रपति के समर्थकों की अपार भीड़ में 'अब की बार, ट्रम्प सरकार' का नारा लगाने वाले लाखों अप्रवासी भारतीय भक्त भी शामिल हैं। चुनावी नतीजों पर मोहर लगाने के लिए कैपिटल हिल पर छह जनवरी को हुई संसद की संयुक्त बैठक में कई ट्रम्प समर्थक सांसदों ने अपने वक्तव्यों से ऐसा जता भी दिया। ट्रम्प की अमेरिकी कांग्रेस में ताक़त को लेकर ज्यादा स्पष्टता उनके खिलाफ़ पेश हुए महाभियोग प्रस्ताव पर होने वाली सीनेट की बहस में हो जाएगी। आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिए, अगर अपनी चुनावी हार के बाद ट्रम्प और ज्यादा ताकतवर हो गए हों।

बाइडेन ने अपने शपथ भाषण में देशवासियों से एकजुट होकर चुनौतियों का सामना करने और 'अमेरिका महान' के सपने को साकार करने की अपील तो की है, पर उनके समक्ष ख़तरे कहीं ज्यादा बड़े हैं और नव-निर्वाचित राष्ट्रपति इसे अच्छे से जानते भी हैं। आंतरिक विद्रोहियों के साथ-साथ बाहरी अधिनायकवादी ताकतें भी उनकी सरकार को अस्थिर करने में लगी रहेंगी। इसके सारे बीज वाशिंगटन छोड़ने के पहले ही ट्रम्प और उनके विदेश सचिव बो चुके हैं। ये बाहरी ताकतें वे हैं, जो न सिर्फ प्रजातंत्र और मानवाधिकारों की विरोधी हैं, बल्कि वे कोरोना के कारण उत्पन्न हुए संकटकाल का फ़ायदा उठाकर अपनी एकदलीय शासन व्यवस्था को और मज़बूत करना चाहती हैं।

बाइडेन के सत्ता पर क़ाबिज़ हो जाने के बाद पश्चिमी यूरोप सहित उन कई देशों के नागरिकों ने राहत की साँस ली है, जो ट्रम्प की दूसरी बार जीत को प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं के लिए एक बड़ा ख़तरा मानते थे। पर वे देश यह भी जानते हैं कि ख़तरा केवल स्थगित हुआ है, समाप्त नहीं हुआ! एक तात्कालिक 'राहत' को स्थायी 'उपलब्धि' में परिवर्तित होता देखने के लिए अभी चार वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जो किसी भी राष्ट्र के जीवन में काफ़ी लम्बा समय होता है। बाइडेन जब कह रहे थे कि हरेक 'असहमति' को 'सम्पूर्ण युद्ध' का कारण नहीं बनाया जा सकता, तब कैपिटल हिल के शपथ मंच पर उनका यह वाक्य सुनने के लिए ट्रम्प उसी तरह से मौजूद नहीं थे, जिस तरह बराक ओबामा 20 जनवरी 2017 को सत्ता हस्तांतरण के वक्त पूर्व राष्ट्रपति (ट्रम्प) को अपने खिलाफ़ बोलते हुए चुपचाप सुन रहे थे। बाइडेन भी डेमोक्रेट ज़रूर हैं, पर ओबामा नहीं हैं! ❑

पाठ्यक्रमों से टैगोर को हटाने की बात करने वाले उन्हें आदर्श बता रहे हैं!

❑ राम पुनियानी

पश्चिम बंगाल में चुनाव नजदीक हैं। भाजपा ने बंगाल के नायकों को अपना बताने की कवायद शुरू कर दी है। जहां तक भाजपा की विचारधारा का प्रश्न है, बंगाल के केवल एक नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी, इस पार्टी के अपने हैं। वे भाजपा के पूर्व अवतार जनसंघ के संस्थापक थे। बंगाल के जिन अन्य नेताओं ने भारत के राष्ट्रीय मूल्यों को गढ़ा और हमारी सोच को प्रभावित किया, उनमें स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर और सुभाषचन्द्र बोस शामिल हैं। स्वामी विवेकानंद जातिप्रथा के कड़े विरोधी थे और हमारे देश से गरीबी का उन्मूलन करने के मजबूत पक्षधर थे। वे दरिद्र को ही नारायण (ईश्वर) मानते थे। उनके लिए निर्धनों की सेवा, ईश्वर की आराधना के समतुल्य थी।

नेताजी प्रतिबद्ध समाजवादी थे और हिन्दू राष्ट्रवाद उनको कतई रास नहीं आता था। इसके बावजूद भाजपा उन्हें अपना सिद्ध करने में लगी है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर महान मानवतावादी थे और भयमुक्त समाज के निर्माण के पक्षधर थे। इसके बाद भी भाजपा जैसी साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद की पैरोकार पार्टी उन्हें अपनी विचारधारा का समर्थक बताने पर तुली हुई है। पार्टी ऐसा जताना चाहती है कि मानो गुरूदेव कट्टर हिन्दू राष्ट्रवादी थे।

नरेन्द्र मोदी ने कहा कि टैगोर स्वराज के हामी थे। आरएसएस के मुखिया मोहन भागवत का दावा है कि टैगोर ने हिन्दुत्व की परिकल्पना का विकास किया था। यह विडंबना ही है कि जिस राजनैतिक संगठन ने स्वाधीनता संग्राम में हिस्सेदारी ही नहीं की और न ही भारत के एक राष्ट्र के रूप में विकास की प्रक्रिया में कोई योगदान दिया, वह स्वराज की बात कर रही है। टैगोर प्रतिबद्ध मानवतावादी थे। उनकी सोच में सम्प्रदायवाद के लिए कोई जगह नहीं थी। मानवता उनके विचारों का केन्द्रीय तत्व थी। उन्होंने लिखा है कि भारत के मूल निवासियों ने पहले आर्यों और उसके बाद मुसलमानों के साथ मिलजुलकर रहना सीखा। इसके विपरीत, हिन्दू राष्ट्रवादी दावा करते आए हैं कि आर्य इस देश के मूलनिवासी थे। यह दावा इसलिए, ताकि इस देश को एक धर्म विशेष की भूमि बताया जा सके। वे मुसलमानों को विदेशी और आक्रांता बताते हैं।

अपने उपन्यास 'गोरा' में गुरूदेव ने परोक्ष रूप से कट्टर हिन्दू धर्म की कड़ी आलोचना की है। उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र गोरा का हिन्दू धर्म, आज के हिन्दुत्व से काफी मिलता-जुलता है। उपन्यास के अंत में उसे पता चलता है कि वह युद्ध में मारे गए एक अंग्रेज दंपत्ति का पुत्र है और उसका लालन-पालन एक हिन्दू स्त्री आनंदमोई ने किया है। वह अवाक रह जाता है।

आज हमारे देश की राजनीति में जो कुछ हम देख रहे हैं, वह टैगोर की प्रसिद्ध और दिल को छू लेने वाली कविता 'जहां मन है निर्भय और मस्तक है ऊँचा' से बिल्कुल ही मेल नहीं खाता। इस सरकार के पिछले सात सालों के राज में सच बोलने वाला भयातुर रहने को मजबूर है। जो लोग आदिवासियों के अधिकारों की बात करते हैं, उन्हें शहरी नक्सल कहा जाता है। जो लोग किसी धर्म विशेष के अनुयायियों पर अत्याचारों का विरोध करते हैं, उन्हें टुकड़े-टुकड़े गैंग बताया जाता है। अपनी इस कविता में टैगोर 'विवेक की निर्मल सरिता' की बात करते हैं। कहां है वह सरिता? आज की सरकार ने तो अपने सभी आलोचकों को राष्ट्रद्रोही बताने का व्रत ले लिया है।

हमारे वर्तमान शासक आक्रामक राष्ट्रवाद के हामी हैं। वे 'घर में घुसकर मारने' की बात करते हैं। इसके विपरीत, टैगोर युद्ध की निरर्थकता के बारे में आश्वस्त थे। ऐसे राष्ट्रवाद में उनकी कोई श्रद्धा नहीं थी, जो कमजोर देशों को शक्तिशाली देशों का उपनिवेश बनाता है और जिससे प्रेरित होकर शक्तिशाली राष्ट्र अपनी सैन्य शक्ति का प्रयोग अपने देश की सीमाओं का विस्तार करने के लिए करते हैं। जिस समय पूरी दुनिया प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने की आशंका से भयभीत थी, उस समय टैगोर की 'गीतांजलि' ने ब्रिटिश कवियों पर भी गहरा प्रभाव डाला था। टैगोर का आध्यात्मिक मानवतावाद, राष्ट्र के बजाय समाज की भलाई और स्वतंत्रता की बात करता है।

मोदी और शाह, टैगोर की शान में जो कसीदे काढ़ रहे हैं, उसका एकमात्र लक्ष्य बंगाल में होने वाले चुनावों में वोट हासिल करना है। वैचारिक स्तर पर वे टैगोर के घोर विरोधी हैं। आरएसएस से संबद्ध शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, जिसके अध्यक्ष दीनानाथ बत्रा थे, ने यह सिफारिश की थी कि एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों में से टैगोर से संबंधित सामग्री हटा दी जाए।

टैगोर द्वारा लिखित हमारे राष्ट्रगान 'जन गण मन' को भी संघ पसंद नहीं करता। उसकी पसंद बंकिमचन्द्र चटर्जी लिखित 'वंदे मातरम' है। संघ के नेता समय-समय पर यह कहते रहे हैं कि टैगोर ने 'जन गण मन' ब्रिटेन के सम्राट जार्ज पंचम की शान में उस समय लिखा था, जब वे भारत की यात्रा पर आए थे। भाजपा के वरिष्ठ नेता कल्याण सिंह ने यह आरोप लगाया था कि जन गण मन में 'अधिनायक' शब्द का प्रयोग जार्ज पंचम के लिए किया गया था। यह इस तथ्य के बावजूद कि टैगोर ने अपने जीवनकाल में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि अधिनायक शब्द से उनका आशय उस शक्ति से है, जो सदियों से भारत भूमि की नियति को आकार देती रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता महान कवि के स्पष्ट खंडन के बाद भी संघ और उसके संगी-साथी यह कहने से बाज नहीं आते कि टैगोर ने ब्रिटिश सम्राट की चाटुकारिता करने के लिए यह गीत लिखा था। और इसलिए वे जन गण मन की बात नहीं करते। 'इस देश में रहना है तो वंदे मातरम कहना होगा' उनका नारा है।

हमारा राष्ट्रगान देश की विविधता और समावेशिता का अति सुंदर वर्णन करता है। परंतु हमारे वर्तमान शासकों के विचारधारात्मक पितामहों को विविधता और बहुवाद पसंद नहीं हैं। वे तो देश को एकसार बनाना चाहते हैं। संघ परिवार यह भी कहता रहा है कि नेहरू ने मुसलमानों को खुश करने के लिए जन गण मन को राष्ट्रगान के रूप में चुना। जिस समिति ने इस गीत को राष्ट्रगान का दर्जा देने का निर्णय लिया था, वह इसमें वर्णित देश के बहुवादी चरित्र से प्रभावित थी। यह गीत भारतीय इतिहास की टैगोर और अन्य नेताओं की इस समझ से भी मेल खाता है कि भारत के निर्माण में देश के मूल निवासियों, आर्यों और मुसलमानों-तीनों का योगदान रहा है।

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर साधु प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, जिनका आध्यात्म, मानवतावाद से जुड़ा हुआ था, न कि किसी संकीर्ण साम्प्रदायिक सोच से। उनका राष्ट्रवाद ब्रिटिश अधिनायकवाद का विरोधी था और स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय के मूल्यों में आस्था रखता था। ❑

राम ने अपने जीवन में वचनों का पालन किया, यह गांधी के लिए आदर्श था

❑ डॉ. चन्द्रविजय चतुर्वेदी

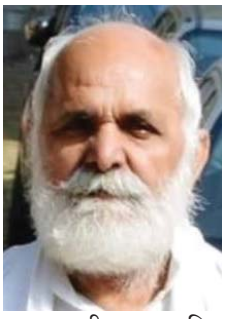

गांधी के राम

गांधी ने भक्तों व ब्रह्मवेत्ताओं के राम को आत्मसात करते हुए उसे सत्य के रूप में देखा। जीवन पर्यन्त अपनी साधना में गांधी ने राम का ही आश्रय लिया। गांधी का राम वह परम ब्रह्म परमेश्वर है, जिसे महर्षि विश्वमित्र ने पहचाना कि इस दशरथनन्दन राजकुमार में वह रामत्व अन्तर्निहित है, जिसे सिंहासन तक सीमित नहीं रहना है। इसे जनचेतना जागरण के लिए, यज्ञ की रक्षा के लिए लोक में लाना होगा। गांधी ने अपने राम के रामत्व को सुराज के रूप देखा और उसे अपनी पैदल यात्राओं और सत्याग्रह में अवतरित किया।

कबीर के राम वही राम हैं, जिनके आराधक भक्त गांधी थे। राम ने अपने वनवास काल में उत्तर से दक्षिण तक वनवासी रीछ, वानर, निषाद, गीध जैसी शोषित, दलित उपेक्षित संस्कृतियों का एकीकरण कर मर्यादित मानवीय संस्कृति का संश्लेषण किया। जन सामान्य और ऋषियों, मुनियों का एकीकरण किया। राम ने इस लोकचेतना को राक्षसी संस्कृति से जूझने के लिए सक्षम बनाया, जो दैवी संस्कृति को पराजित कर चुका था।

गांधी के लिए राम का वनवास एक प्रेरणा का स्रोत है, जो जनचेतना के लिए गांधी दर्शन का मूलाधार रहा। गांधी दर्शन के विलक्षण व्याख्याता आचार्य विनोबा भावे ने इसका पालन किया। आजाद भारत की पहली पंचवर्षीय योजना में विचार विमर्श के लिए जब विनोबा को आमंत्रित किया गया तो उन्होंने वर्धा से दिल्ली तक की रेलयात्रा नहीं की, वे पदयात्रा करते हुए दिल्ली चल पड़े। यही वह रामत्व है, जिसे गांधी ने अपने ईश्वर से ग्रहण किया था। विनोबा पंचवर्षीय योजना को जन भावनाओं के अनुकूल बनाने के लिए इसे आवश्यक समझते थे।

राम ने अपने जीवन में वचनों का पालन किया, यह गांधी के लिए वह आदर्श था, जिसके बल पर उन्होंने जीवन पर्यन्त व्रत का पालन किया। गांधी व्रत की पवित्रता के पक्षधर थे, वे दूसरों के अपराध को अपने ऊपर ओढ़कर प्रायश्चित करते थे। रामत्व के बल पर ही गांधी ने प्रत्यक्ष आदर्शों को प्रमाण माना।

गांधी को ईश्वर पर अटूट विश्वास था और उनकी शक्ति उनका ईश्वर ही था। गांधी पर उनकी भी आस्था थी, जो ईश्वर को नहीं मानते थे तथा गांधी स्वयं उन पर भी विश्वास करते थे, जिनका ईश्वर में विश्वास नहीं था। गांधी ने ईश्वर ही सत्य है, के बजाय सत्य ही ईश्वर है कहा।

रामराज्य की कल्पना को स्पष्ट करते हुए 20 मार्च 1930 को गांधी ने हिंदी पत्रिका

नवजीवन में 'स्वराज्य और रामराज्य' शीर्षक से एक लेख लिखा –स्वराज्य के कितने भी अर्थ क्यों न किये जाएँ तो भी मेरे नजदीक उसका त्रिकाल सत्य एक ही अर्थ है और वह है रामराज्य। यदि किसी को रामराज्य शब्द बुरा लगे तो मैं उसे धर्मराज्य कहूंगा। रामराज्य शब्द का भावार्थ यह है कि उसमें गरीबों की सम्पूर्ण रक्षा होगी। सब काम धर्मपूर्वक किये जाएंगे और लोकमत का हमेशा आदर किया जाएगा। सच्चा चिंतन तो वही है, जिसमें रामराज्य के लिए पवित्र साधन का ही उपयोग किया गया हो। यह याद रहे की रामराज्य स्थापित करने के लिए हमें पांडित्य की आवश्यकता नहीं है, जिस गुण की आवश्यकता है, वह तो सभी वर्गों के लोगों स्त्री, पुरुष, बालक, और बूढ़ों में आज भी मौजूद है। दुःख केवल इतना है कि सब कोई अभी उस हस्ती को पहचानते ही नहीं। सत्य, अहिंसा, मर्यादापालन, वीरता, क्षमा, धैर्य आदि गुणों का हममें से हरेक व्यक्ति, यदि वह चाहे तो क्या आज ही परिचय नहीं दे सकता?

रमन्ते इति रामः

जो रोम रोम से लेकर पूरे ब्रह्माण्ड में रमण करता है, जिसके लिए तुलसी ने कहा–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहि पारा।।

उस राम की उपासना गांधी आत्मशुद्धि और आत्मबल द्वारा करते थे, गांधी ने राम को व्यापक फलक पर प्रक्षेपित करते हुए रामधुन में–'**रघुपति राघव राजाराम**' के साथ '**ईश्वर अल्ला तेरो नाम**' जोड़कर एक ऐसा मन्त्र दिया, जिसका मंतव्य था उदार और सहिष्णु परंपरा को सहेजना तथा नफ़रत और साम्प्रदायिकता को मिटाना।

गांधी हर साँस में राम को भजते थे, अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व गांधी ने मनु से कहा था कि यदि वे किसी लम्बी बीमारी या व्याधि से शैय्या पर दम तोड़ें तो मान लिया जाये कि वे महात्मा नहीं थे। यदि कोई बम विस्फोट हो या प्रार्थना सभा में जाते हुए उन्हें कोई गोली मारे और गिरते हुए उनके मुँह पर राम का नाम हो और मन में मारने वाले के प्रति कोई कटुता न हो, तो उन्हें भगवान का दास माना जाये। गांधी की सांस-सांस में अनवरत रामनाम की गूंज रही है, तभी तो उन्होंने अपनी इस संसार की यात्रा–'हे राम' की ध्वनि उच्चारित करते हुए पूरी की और उस रामध्वनि को इस दुनिया के लिए छोड़ गए। ❑

अखबारों से

बढ़ती महंगाई, छिनती सुविधाएं!

सरकारें धंधा करके मुनाफ़ा कमाने के लिए नहीं होतीं. अपने ही लोगों की जेब काट कर खजाना भरने के लिए तो कतई ही नहीं होतीं. अलबत्ता उनके पास अपनी हर परियोजना को घाटे से बचाने के लिए विद्वानों की सेवा लेने का पूरा हक़ और पैसे होते हैं. यदि फिर भी कोई प्रोजेक्ट घाटे में जाए तो संबंधित बाबुओं समेत उस विभाग के मंत्री तक पर कार्यवाही होनी चाहिए, जैसे प्राइवेट सेक्टर में होती है. इन्हीं मंत्रियों के अपने व्यापार धंधे तो घाटे में नहीं जाते और हर साल इनकी दौलत का बढ़ना भी यही दिखाता है, फिर सरकारी उपक्रम चलाते वक्त सारी कुशलता कहां मुंह छुपा लेती है? और ये किसी एक सरकार की बात नहीं है.

होना यह चाहिए था कि बड़ी और निजी कंपनियां बंद होने के कगार पर आएं तो सरकार को उसमें निवेश करके कमान अपने हाथ में ले लेनी चाहिए, लेकिन हो ये रहा है कि सरकारी उपक्रमों को घाटे में डाल डालकर पूंजीपतियों के हवाले किया जा रहा है. ऊपर से मज़ेदार बात ये है कि लोगों के जेहन में बैठाया जाता है कि प्राइवेट हाथों में काम ठीक चलेगा. यही लोग पलटकर नहीं पूछते कि अगर वह सरकारी हाथों में नहीं चला तो इसका जिम्मेदार कौन है और उसे सज़ा क्यों नहीं दी जानी चाहिए? हमारे पैसों को गटर में बहाने वालों पर कार्यवाही क्यों न हो?

रेल बजट जब बंद हुआ तो मैंने बार बार लिखा कि ये रेल को बेच डालने का अंतिम चरण है, पर लोगों को बार बार आश्वस्त करके प्राइवेट ट्रेन चला ही दी गईं. सब मुंह में दही जमाए बैठे रहे। सारी यूनियनें और राजनीतिक दल चुप पड़े रहे. कुछ दिन और हैं, जब रही सही कसर पूरी हो जानी है. आम आदमी के लिए आवागमन का साधन रही रेल उसके लिए महंगा शौक हो जाएगी. कोरोना के बहाने प्लेटफ़ॉर्म टिकट महंगे कर दिए, खाने-पीने वाली और चादर-तकिये वाली सुविधा इनकी मरज़ी तक बंद है, लेकिन टिकट के दाम में कमी नहीं है. कोई पूछने वाला भी नहीं कि पैसे खर्च करके खाने पर कोरोना नहीं आएगा क्या? क्या सिर्फ तभी आएगा, जब रेल अपनी तरफ से खाना देगी? साधारण ट्रेनों को स्पेशल बनाकर खुले आम लूट चल रही है. हर किसी को दिख रहा है, मगर हैरत है कि कैसा श्मशान सा सन्नाटा है!

इन सब लूटपाट के तरीकों को सह भी लें, अगर किसी तरह की कोई सुविधा दिखे। मगर वह है कहां? बस सरकारी उपक्रम को फेल होने दो, फिर बेच दो और उसके बाद लोगों को कॉरपोरेट की तरह मुनाफ़े की भाषा समझाओ. कोई अगर सवाल करे तो आंखें तरेरकर कहो कि सुविधा नहीं दे रहे क्या? वह चुप हो ही जाएगा, क्योंकि यहां अब तक बहस टैक्स के पैसे को कैसे और कहां खर्च करें के स्तर तक पहुंची ही नहीं. यूरोप के कितने ही देश आपके जिस बिल पर टैक्स लेते हैं, उसमें बाक़ायदा बताते हैं कि आपके द्वारा चुकाए गए कर का कितना फीसद सरकार कहां लगाएगी? महान लोकतंत्र के जागरूक नागरिक को पता ही नहीं चलता कि जीवन के महत्वपूर्ण घंटे और बेशकीमती पसीना लगाकर जो पैसा उसने कमाया और उसमें माचिस तक पर टैक्स दिया, वह कौन से मद में कहां खर्च होना है.

इस बात पर बहस ही नहीं है कि इतना टैक्स वसूला जा रहा है तो सुविधाएं भी बढ़ाओ. शिक्षा मुफ्त करो. इलाज मुफ्त करो. ये टोल टैक्स नाम की कानूनी लूट बंद करो. चुपचाप टैक्स भरके हम अच्छे नागरिक होने का फ़र्ज अदा कर रहे हैं, पर जो उसे वसूल रहे हैं, उनसे यह उम्मीद न करें कि टैक्स का ऐसा उपयोग करें कि महंगाई वाली जिंदगी ज़रा सरल बन जाए. अब तो न जाने कौन सी उम्मीदें राष्ट्रद्रोह करार दे दी जाएं! ❑

बिल गेट्स बने 2 लाख 42 हजार एकड़ कृषि ज़मीन के मालिक

2 लाख 42 हजार एकड़ कृषि ज़मीन का मालिक बनते ही उद्योगपति बिल गेट्स संयुक्त राज्य अमेरिका के सबसे बड़े जमींदार बन गये हैं। यूएसए के 18 राज्यों में उनके पास कृषि ज़मीन है। बिल गेट्स दुनिया के चौथे सबसे अमीर व्यक्ति हैं। फोर्ब्स के अनुसार उनके पास लगभग 121 बिलियन की संपत्ति है। सवाल उठता है कि बिल गेट्स कोई किसान तो हैं नहीं, फिर उनके पास इतनी बड़ी मात्रा में कृषि ज़मीन कैसे आ गई? दरअसल ये सारा कमाल कृषि क्षेत्र में कार्पोरेट के प्रवेश, कार्पोरेट मंडियों और कांट्रैक्ट फार्मिंग का है। जिन तीन कृषि क़ानूनों का आज भारत में विरोध हो रहा है, वे कृषि क़ानून संयुक्त राज्य अमेरिका में दशकों पहले से लागू हैं।

बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन ने 2008 में घोषणा की थी कि उनका फाउंडेशन अफ्रीका और दुनिया के अन्य विकासशील देशों के छोटे किसानों की कृषि क्षेत्र में मदद करेगा। इस प्रोजेक्ट के जरिए बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन छोटे व गरीब किसानों को भूख और गरीबी से बाहर लाने का प्रयास कर रहा है।

गेट्स मेलिंडा फाउंडेशन ने पिछले साल जलवायु परिवर्तन और उच्च उपज वाली डेयरी गायों के प्रतिरोधी 'सुपर फसलों' के विकास और प्रसार में निवेश किया है। पिछले साल 'गेट्स एग वन' संगठन की घोषणा और गठन किया गया है, जो उन प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए एक गैर-लाभकारी संस्था है।

'द लैंड' की एक रिपोर्ट में तीसरे नंबर पर 'वंडरफुल कंपनी' के सह-संस्थापक स्टीवर्ट और लिंडा रेसनिक हैं। लिंडा रेसनिक के पास 1 लाख 90 हजार एकड़ कृषि ज़मीन है। रेसनिक कुल 7.1 बिलियन डॉलर संपत्ति के मालिक हैं। लिंडा रेसनिक अपनी कृषि ज़मीनों पर अपने ब्रांड के लिए कृषि उत्पाद पैदा करते हैं, जिनमें पॉम वंडरफुल, वंडरफुल पिस्ता और वंडरफुल हेलोस मंदारिन शामिल हैं।

गेट्स भले ही यूएसए के सबसे बड़े कृषि ज़मीन के मालिक हो गये हैं, लेकिन सबसे बड़े व्यक्तिगत ज़मींदार नहीं है। 100 शीर्ष अमेरिकी भूस्वामियों की सूची में लिबर्टी मीडिया के अध्यक्ष जॉन मालोन है, जिनके पास 2.2 मिलियन एकड़ ज़मीन और जंगल है। वहीं सीएनएन के संस्थापक टेड टर्नर के पास आठ राज्यों में 2 मिलियन एकड़ कृषि ज़मीन है और वे इस सूची में तीसरे स्थान पर हैं। यहां तक कि अमेज़न के सीईओ जेफ बेजोस भी बड़े पैमाने पर ज़मीन में निवेश कर रहे है, मुख्य रूप से पश्चिम टेक्सास में। उनके पास 4 लाख 20 हजार एकड़ ज़मीन है और वे इस सूची में 25 वें स्थान पर हैं। ❑

हमेशा कोई न कोई तुमसे बेहतर होता है, इसे स्वीकार करना!

चार्ली चैपलिन ने अपनी नृत्यांगना बेटी को एक मशहूर खत लिखा। लिखा कि मैं सत्ता के खिलाफ विदूषक रहा, तुम भी गरीबी को जानो, मुफ़लिसी का कारण ढूंढो, इंसान बनो, इंसानों को समझो, जीवन में इंसानियत के लिए कुछ कर जाओ, खिलौने बनना मुझे पसंद नहीं बेटी। मैं सबको हंसा कर रोया हूं, तुम बस हंसती रहना। **–सं.**

मेरी प्यारी बेटी,

रात का समय है और क्रिसमस की रात है। मेरे इस छोटे से घर की सभी निहत्थी लड़ाइयां सो चुकी हैं। तुम्हारे भाई-बहन भी नींद की गोद में हैं। तुम्हारी मां भी सो चुकी है। मैं अधजगा हूं, कमरे में धीमी सी रौशनी है। तुम्हारी फोटो वहां उस मेज पर है और यहां मेरे दिल में भी, पर तुम कहां हो? वहां सपनों जैसे भव्य शहर पेरिस में! चैम्प्स एलिसस के शानदार मंच पर नृत्य कर रही हो। इस रात के सन्नाटे में मैं तुम्हारे कदमों की आहट सुन सकता हूं। शरद ऋतु के आकाश में टिमटिमाते तारों की चमक मैं तुम्हारी आंखों में देख सकता हूं। ऐसा लावण्य और इतना सुन्दर नृत्य! सितारा बनो और चमकती रहो। परन्तु यदि दर्शकों का उत्साह और उनकी प्रशंसा तुम्हें मदहोश करती है या उनसे उपहार में मिले फूलों की सुगंध तुम्हारे सिर चढ़ती है तो चुपके से एक कोने में बैठकर मेरा खत पढ़ते हुए अपने दिल की आवाज सुनना।

जब तुम नन्ही बच्ची थी तो रात-रात भर मैं तुम्हारे सिरहाने बैठकर तुम्हें स्लीपिंग ब्यूटी की कहानी सुनाया करता था। मैं तुम्हारे सपनों का साक्षी हूं। मैंने तुम्हारा भविष्य देखा है, मंच पर नाचती एक लड़की, मानो आसमान में उड़ती परी। लोगों की करतल ध्वनि के बीच मैंने उनकी प्रशंसा के ये शब्द सुने हैं—इस लड़की को देखो! यह वह एक बूढ़े विदूषक की बेटी है। याद है, उसका नाम चार्ली था!

...हां! मैं चार्ली हूं! बूढ़ा विदूषक! अब तुम्हारी बारी है! मैं फटी पैंट में नाचा करता था और मेरी राजकुमारी! तुम रेशम की खूबसूरत ड्रेस में नाचती हो। ये नृत्य और ये शाबाशी तुम्हें सातवें आसमान पर ले जाने के लिए सक्षम है। उड़ो और उड़ो, पर ध्यान रखना कि तुम्हारे पांव सदा धरती पर टिके रहें। तुम्हें लोगों की जिन्दगी को करीब से देखना चाहिए। गलियों-बाजारों में नाच दिखाते नर्तकों को देखो, जो कड़कड़ाती सर्दी और भूख से तड़प रहे हैं। मैं भी उन जैसा था, जिरलडाइन! उन जादुई रातों में, जब मैं तुम्हें लोरी गा-गाकर सुलाया करता था और तुम नींद में डूब जाती थी, उस वक्त मैं जागता रहता था। मैं तुम्हारे चेहरे को निहारता, तुम्हारे हृदय की धड़कनों को सुनता और सोचता, चार्ली! क्या यह बच्ची तुम्हें कभी जान सकेगी? तुम मुझे नहीं जानती, जिरलडाइन! मैंने तुम्हें अनगिनत कहानियां सुनाई हैं, पर 'उसकी' कहानी कभी नहीं सुनाई। वह कहानी भी रोचक है। यह उस भूखे विदूषक की कहानी है, जो लन्दन की गंदी बस्तियों में नाच-गाकर अपनी रोजी कमाता था। यह मेरी कहानी है। मैं जानता हूं, पेट की भूख किसे कहते हैं! मैं जानता हूं कि सिर पर छत न होने का क्या दंश होता है। मैंने देखा है, मदद के लिए उछाले गये सिक्कों से उसके आत्म सम्मान को छलनी होते हुए, पर फिर भी मैं जिंदा हूं, इसीलिए फिलहाल इस बात को यहीं छोड़ते हैं।

...तुम्हारे बारे में ही बात करना उचित होगा जिरलडाइन! तुम्हारे नाम के बाद मेरा नाम आता है चैपलिन! इस नाम के साथ मैंने चालीस वर्षों से भी अधिक समय तक लोगों का मनोरंजन किया है और हंसने से अधिक मैं रोया हूं। जिस दुनिया में तुम रहती हो, वहां नाच-गाने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आधी रात के बाद जब तुम थियेटर से बाहर आओगी तो तुम अपने समृद्ध और सम्पन्न चाहने वालों को तो भूल सकती हो, पर जिस टैक्सी में बैठकर तुम अपने घर तक आओ, उस टैक्सी ड्राइवर से यह पूछना मत भूलना कि उसकी पत्नी कैसी है? यदि वह उम्मीद से है तो क्या अजन्मे बच्चे के नन्हे कपड़ों के लिए उसके पास पैसे हैं? उसकी जेब में कुछ पैसे डालना न भूलना।

...कभी कभार बसों में जाना, सब-वे से गुजरना, कभी पैदल चलकर शहर में घूमना। लोगों को ध्यान से देखना, विधवाओं और अनाथों को दया-दृष्टि से देखना। कम से कम दिन में एक बार खुद से यह अवश्य कहना कि मैं भी उन जैसी हूं।

...कला किसी कलाकार को पंख देने से पहले उसके पांवों को लहुलुहान जरूर करती है। यदि किसी दिन तुम्हें लगने लगे कि तुम अपने दर्शकों से बड़ी हो तो उसी दिन मंच छोड़कर भाग जाना, टैक्सी पकड़ना और पेरिस के किसी भी कोने में चली जाना। मैं जानता हूं कि वहां तुम्हें अपने जैसी कितनी नृत्यांगनाएं मिलेंगी। तुमसे भी अधिक सुन्दर और प्रतिभावान, फर्क सिर्फ इतना है कि उनके पास थियेटर की चकाचौंध और चमकीली रोशनी नहीं है। उनकी सर्चलाइट चन्द्रमा है। अगर तुम्हें लगे कि इनमें से कोई तुमसे अच्छा नृत्य करती है तो उसे शाबासी देना। हमेशा कोई न कोई तुमसे बेहतर होता है, इसे स्वीकार करना। आगे बढ़ते रहना और निरंतर सीखते रहना ही कला है।

इस खत के साथ मैं तुम्हें एक चेकबुक भी भेज रहा हूं, ताकि तुम अपनी मर्जी से खर्च कर सको। पर दो सिक्के खर्च करने के बाद सोचना कि तुम्हारे हाथ में पकड़ा तीसरा सिक्का तुम्हारा नहीं है, यह उस अज्ञात व्यक्ति का है, जिसे इसकी बेहद जरूरत है। ऐसे इंसान को तुम आसानी से ढूंढ सकती हो, बस पहचानने के लिए एक नजर की जरूरत है। मैं पैसे की बात इसलिए कर रहा हूं क्योंकि मैं इस राक्षस की ताकत को जानता हूं।

...हो सकता है, किसी रोज कोई राजकुमार तुम्हारा दीवाना हो जाए। अपने खूबसूरत दिल का सौदा सिर्फ बाहरी चमक-दमक पर न कर बैठना। हां! जब ऐसा समय आये कि खुद तुम किसी से प्यार करने लगो तो उसे अपने पूरे दिल से प्यार करना। मैंने तुम्हारी मां को इस विषय में तुम्हें लिखने को कहा था। वह प्यार के सम्बन्ध में मुझसे अधिक जानती हैं। हो सकता है मेरे शब्द तुम्हें हास्यास्पद जान पड़ें पर मेरे विचार में तुम्हारे अनावृत शरीर का अधिकारी वही हो सकता है, जो तुम्हारी अनावृत आत्मा की सच्चाई का सम्मान करने का सामर्थ्य रखता हो।

...मैं ये भी जानता हूं कि एक पिता और उसकी सन्तान के बीच सदैव अंतहीन तनाव बना रहता है पर विश्वास करना, मुझे अत्यधिक आज्ञाकारी बच्चे पसंद नहीं। मैं सचमुच चाहता हूं कि जो मैं कहना चाहता हूं वह सब तुम अच्छी तरह समझ जाओ। तुम्हारी धमनियों में मेरा रक्त प्रवाहित है। जब मेरी धमनियों में बहने वाला रक्त जम जाएगा, तब तुम्हारी धमनियों में बहने वाला रक्त तुम्हें मेरी याद दिलायेगा। याद रखना, तुम्हारा पिता कोई फरिश्ता नहीं, कोई जीनियस नहीं, वह तो जिन्दगी भर एक इंसान बनने की ही कोशिश करता रहा। तुम भी यही कोशिश करना। ❑

लॉरेन्स लेम्यूक्स

दुनिया का दिल जीतने वाला एक असाधारण नाविक

❑ सीताराम गुप्ता

वर्ष 1988 में सिओल ओलंपिक में नौकायन की एकल प्रतिस्पर्धा में पदक हासिल करने के लिए लॉरेन्स लेम्यूक्स एक दशक से भी अधिक समय से प्रशिक्षण ले रहे थे और निरंतर कठिन अभ्यास कर रहे थे। आखिर वह घड़ी भी आ पहुँची, जब लॉरेन्स लेम्यूक्स का सपना साकार होने में थोड़ा सा ही समय शेष रह गया था। लॉरेन्स लेम्यूक्स के गोल्ड मेडल जीतने की प्रबल संभावना थी, लेकिन जैसे ही प्रतिस्पर्धा प्रारंभ हुई, मौसम ने अचानक रंग बदलना शुरू कर दिया। तेज़ हवाएँ चलने लगीं, जिसके कारण शांत समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। ऐसे में कोई भी हतोत्साहित हो सकता था लेकिन लॉरेन्स लेम्यूक्स ने हार नहीं मानी और ऊँची-ऊँची लहरों के बीच अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। अत्यंत चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के बावजूद लॉरेन्स लेम्यूक्स ने शुरुआती बढ़त भी हासिल कर ली। उनका गोल्ड मेडल लगभग निश्चित हो गया था।

लेकिन ये क्या? इन विषम परिस्थितियों के कारण उनसे एक चूक हो गई। ऊँची-ऊँची लहरों के कारण दिशा बतलाने वाले संकेतों को देखना असंभव हो गया और लॉरेन्स लेम्यूक्स एक संकेत चूक कर आगे बढ़ गए। आगे बढ़ने से पहले उन्हें उस चूके हुए संकेत तक आने के लिए विवश होना पड़ा और वहाँ से पुनः रेस शुरू करनी पड़ी। इस सबमें समय की कितनी बर्बादी हुई होगी और इसके कारण पदक के नज़दीक पहुँचना कितना मुश्किल हो गया होगा, यह अनुमान लगाना असंभव नहीं। इस चूक और अन्य कठिनाइयों के बावजूद लॉरेन्स लेम्यूक्स शानदार प्रदर्शन करते हुए दूसरे स्थान तक जा पहुँचे। उन्हें रजत पदक मिलने की पूरी संभावना नज़र आ रही थी और वे तेज़ी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। उनका उत्साह देखने लायक था।

इस बीच उन्होंने देखा कि बीच समुद्र में सिंगापुर के नाविकों की एक नाव उल्टी पड़ी है। एक आदमी जो बुरी तरह से घायल हो गया था, पलटी हुई नाव की पेंदी को किसी तरह से जकड़े हुए पड़ा था। नाव से कुछ ही दूरी पर एक अन्य व्यक्ति बहता हुआ जा रहा था। समुद्र

की स्थिति अब और भी विकराल हो चुकी थी। लॉरेन्स लेम्यूक्स एक अत्यंत अनुभवी नाविक थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि सुरक्षा नौका अथवा बचाव दल के आने तक ये बहता हुआ व्यक्ति दूर चला जाएगा और उल्टी हुई नाव के ऊपर पड़ा व्यक्ति भी जल्दी ही समुद्र की विशाल लहरों से टकराकर नीचे गिर पड़ेगा और बहने लगेगा। स्थिति ऐसी थी कि तत्क्षण सहायता न मिलने पर दोनों का ही बच पाना असंभव प्रतीत हो रहा था।

लॉरेन्स लेम्यूक्स के सामने दो विकल्प थे। पहला विकल्प ये था कि वह इस दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों को नज़रंदाज़ करके अपना पूरा ध्यान केवल अपने लक्ष्य को पाने के लिए अपनी नौका और रेस पर केंद्रित करते, जिसके लिए उन्होंने वर्षों तक कड़ा परिश्रम किया था। यह स्वाभाविक भी था और इसमें असंख्य संभावनाएँ और आर्थिक हित भी निहित थे। लेम्यूक्स के समक्ष दूसरा विकल्प था दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों की मदद करना। उन्हें याद आया कि समुद्र में उतरने वाले हर व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है, सबसे पहले संकटग्रस्त व्यक्तियों का जीवन बचाना। यद्यपि उनका मुख्य लक्ष्य किसी भी क़ीमत पर प्रतिस्पर्धा जीतना था, जिसके लिए उन्होंने दिन-रात कठोर अभ्यास किया था और जिसके लिए उनके देशवासी उत्सुकतापूर्वक उनके विजयी होने की प्रतीक्षा कर रहे थे, लेकिन लॉरेन्स लेम्यूक्स ने बिना किसी हिचकिचाहट के फ़ौरन अपनी नाव उस दिशा में मोड़ दी, जिधर उल्टी हुई दुर्घटनाग्रस्त नाव समुद्र की विकराल लहरों में हिचकोले खा रही थी।

लेम्यूक्स ने बिना देर किए दोनों नाविकों को एक-एक करके अपनी नाव में खींच लिया और तब तक वहीं इंतज़ार किया, जब तक कि कोरिया की नौसेना आकर उन्हें सुरक्षित निकाल नहीं ले गई। इसके बाद उन्होंने पुनः अपनी रेस शुरू की, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। मेडल उनके हाथ से फिसल चुका था। लॉरेन्स लेम्यूक्स इस प्रतिस्पर्धा में बाईसवें स्थान पर आए। लॉरेन्स लेम्यूक्स ने अपने जीवन की एकमात्र महान उपलब्धि को अपने हाथ से यूँ ही क्यों फिसल जाने दिया? इसका सीधा सा उत्तर है लॉरेन्स लेम्यूक्स के जीवन मूल्य। लॉरेन्स लेम्यूक्स के जीवन मूल्य इस तथ्य पर निर्भर नहीं थे कि विजेता होने के लिए ओलंपिक मेडल प्राप्त करना ही एकमात्र विकल्प है। उन्होंने अपने जीवन में भौतिक उपलब्धियों के बजाय उदात्त जीवन मूल्यों को महत्त्व दिया। यह जीवन मूल्य था हर हाल में दूसरों की मदद अथवा करुणा का भाव।

करुणा के अपने उदात्त भाव की वजह से लॉरेन्स लेम्यूक्स दो व्यक्तियों को मृत्यु के मुख में जाते देख व्यथित हो उठे। इस व्यथा ने लेम्यूक्स को उनकी मदद करने की प्रेरणा दी और उनकी मदद से वे लोग जीवित बच सके।

ओलंपिक के इतिहास में असंख्य लोगों ने मेडल हासिल किए हैं। कई खिलाड़ियों ने तो कई सालों तक लगातार कई-कई मेडल भी हासिल किए हैं। कई मेडल विजेता अपने अच्छे प्रदर्शन और अपनी अन्य विशिष्टताओं के कारण चर्चित भी कम नहीं हुए, लेकिन मेडल न मिलने पर भी जो सम्मान लॉरेन्स लेम्यूक्स को मिला, वह अद्वितीय है। लॉरेन्स लेम्यूक्स को प्रतिस्पर्धा में तो कोई पदक नहीं मिल सका, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक कमेटी द्वारा लॉरेन्स लेम्यूक्स को उनके साहस, आत्म-त्याग और खेल भावना के लिए 'पियरे द कूबर्तिन' पदक प्रदान किया गया। बाद में ये पूछने पर कि क्या ओलंपिक मेडल खोने पर कभी अफसोस भी हुआ, लॉरेन्स लेम्यूक्स ने कहा कि यदि उनके जीवन में दोबारा ऐसी स्थिति आती है, तो वह हर हाल में उसे दोहराना पसंद करेंगे। सच, किसी का जीवन बचाने से अच्छी प्रतिस्पर्धा हो ही नहीं सकती। लॉरेन्स लेम्यूक्स की करुणा की भावना व वास्तविक मदद ने उन्हें अपने देश के लोगों के दिलों का ही नहीं, दुनिया के लोगों के दिलों का सम्राट बना दिया। ❑

अक्षर-अक्षर चित्र!
बाड़े के अंदर विकास

❑ प्रेम प्रकाश

गायों के एक झुंड की कल्पना कीजिये, जिन्हें हम सबने मिलकर एक बाड़े मे बंद कर रखा है। चारों तरफ से मजबूत लोहे के कंटीले तारों का बाड़ है। इन्ही गायों के दूध के सहारे हमारा जीवन है, हमारा स्वास्थ्य है, हमारी शानदारी है, हमारा सबकुछ है। बाड़े के अंदर जो घास थी, वह धीरे धीरे खत्म हो गयी है। बाद मे जब गायें भूखों मरने लगीं तो चिल्ला चिल्ला के सबकी नाक मे दम कर दिया है। भूख से बेहाल चिल्लाते चिल्लाते जब कोई उपाय नही रहा तो अब उन्होने एक दूसरे की पूंछ चबाना शुरू कर दिया है और अब बाड़े से बाहर आने के लिए खूंटा तुड़ाने लगी हैं।

आसपास के सारे पेड़, सारी हरियाली हमने काट डाली है। नदी, तालाब सब पाट डाले हैं। छाया, पानी और हरियाली, सब हम गायों से बहुत दूर ले गए हैं और अपने लिए ऐशगाह व सैरगाह बना डाले हैं। उनके हिस्से के सारे फूलों, सारे फलों, सारे वृक्षों, सारे पानी और सारी छाया को हमने अपने लिए महफूज कर लिया है। गायों को वह सब बाड़े के अंदर से ही दिखाई पड़ता है। वे भूख और प्यास से व्याकुल हैं और ज़ोर ज़ोर से रंभाती हैं। वे बाड़े को तोड़कर अपनी पहुँच से बहुत दूर सामने फैले उस हरियाले चरागाह तक पहुँचना चाहती हैं। इसी शोर में किसी गाय की सींग से बाड़े का एक तार टूट गया है और बाड़ रक्षकों ने मिलकर पटक पटक के उसे मारा है।

यह गाय कम्युनिस्ट हो रही है। अपने लिए ही नही, अपनी दूसरी साथियों के लिए भी वह चरागाह तक पहुँचने का रास्ता खोलना चाहती है। यह तो अराजकता है। कानून के शासन में इस बात की इजाज़त नही है। उन मनबढ़ गायों पर मुकदमे कायम कराये गये हैं। वे शांति व्यवस्था के लिए खतरा बन रही हैं। कुछ पर तो नेतागिरी भी सवार है। वे एक शांत और सुंदर व्यवस्था का कानून, भंग कर रही हैं। वे व्यवस्था की बाड़ तोड़ देने पर आमादा हैं। इन गायों की हिमाकत पर व्यवस्था के सुर एक हैं—इन्हे सजा मिलनी ही चाहिए। इनके बंधन और टाइट करो। इनका बाड़ा और सघन करो। ये भूख का प्रतिकार करना चाहती हैं। ये कानून का सम्मान नही कर रही हैं। इन्हें व्यवस्था में विश्वास नही है, इसलिए ये व्यवस्था के काम में बाधा डाल रही हैं।

चार छः गायों पर व्यवस्था की लाठियाँ पड़ते ही बाकियों को थोड़ी अक्ल आई है और अब वे बैठे बैठे सूखे मुंह जुगाली करने की आदत डाल रही हैं। व्यवस्था के पहरुए जो समझा रहे हैं, इनको वह समझना ही पड़ेगा। व्यवस्था की आवाज बाड़े के अंदर गूंज रही है—हमने पेड़ काटकर तुम्हारे सिर पर टिन की ये खूबसूरत चादर लगाई है कि नही लगाई है...? कौन बोला? कौन बोला कि ये टिन की चादर दहकती है...? अरे मूर्खों, विकास तुम्हारा होगा तो उसकी कीमत क्या हम चुकायेंगे...? हमने तुम्हारे बाड़े के चारों तरफ इतनी चिकनी ये सड़कें बनवाईं, ये पुदीने लगवाए, तंबाकू की इतनी महंगी खेती कारवाई, फुलवारी लगवायी, घुड़दौड़ के लिए मैदान बनवाए, पार्क बनवाए, टेनिस कोर्ट भी बनवाए हैं कि नही बनवाए...?

लेकिन तुममें अनुशासन तो है ही नही। धैर्य तो बिलकुल ही नही है। अभी छोड़ दें, तो ये सारा विकास, ये सारी सजावट चर जाओगे। ये सारा कुछ जो इतनी मेहनत और खर्च करके बनवाया है, तुम भुक्खड़ लोग सब नष्ट कर दोगे। तुम्हारे लिए हम क्या क्या कर रहे हैं, हमारे इस विकास के काम पर वर्ल्ड बैंक तक की रिपोर्ट आ गयी है। सब सराहना कर रहे हैं। अमेरिका तक खुश है लेकिन तुम लोग घास खाने वाली जात...! घास खाने वाली जातियाँ विकास नही करतीं। एक मुट्ठी घास के लिए मरने वाली जातियाँ क्रान्ति नही करतीं। हमें क्रान्ति करनी है कि नही करनी है...? बोलो क्रान्ति चाइय्ये कि नही चाइय्ये...!

गायों को ये सब बातें कुछ समझ में नही आ रही हैं। वे पिटने के भय से सूखे मुंह पगुरी किए जा रही हैं और दिन-दिन सूखती जा रही हैं। कुछ लोगों को लगता है कि इस तरह तो गायें जल्दी ही मर जाएंगी और एक दिन दूध के बिना हम सब भी मर जाएँगे। वे लोग गायों के हक में व्यवस्था से गुहार लगाते हैं। व्यवस्था काफी सोच विचार करने के बाद अपने अफसरों और सिपहसालारों की तनख्वाह बढ़ा देती है। फिर उनसे योजनाएँ बनाने को कहती है। अफसरों की योजनाएं बनकर आ गयी है। गायों को संदेश भेजा गया है कि आपके बुरे दिन अब बीत गए। व्यवस्था ने आपके दुखों पर गंभीरता से विचार किया है और आपके लिए कुछ अच्छे कदम उठाए जा रहे हैं, आपके अच्छे दिन लाये जा रहे हैं।

व्यवस्था ने आपके सिर से ये दहकती हुई टिनें हटा कर आपको खुला आसमान देने का निर्णय लिया है। भींगे हुए ब्रशों से आपकी मालिश की जाएगी। आपकी सींगों को अब सुनहरे रंग से रंग दिया जाएगा। आपका दूध निकालने के लिए यूरोप से मशीनें मंगा ली गयी हैं। आपके इस बाड़े के अंदर बोने के लिए हमने प्लास्टिक की घास भी मंगा ली है। अब आप इस शांति को महसूस कीजिये और व्यवस्था का सहयोग कीजिये। ये जो कुछ हम कर रहे हैं, विश्वास रखिए सब आपके कल्याण के लिए ही कर रहे हैं। घास तो आप सदियों से खा रहे हैं, उससे क्या होता है? आपको जमीन में उगी गंदी घास खाने की आदत लगा दी गयी है, लेकिन अब व्यवस्था बदल गयी है, अब राज्य का विकास किया जायेगा, जो इसके पहले कभी नहीं किया गया। हम आपके ही विकास में तो लगे हैं और विकास की कीमत तो चुकानी पड़ती है। इसलिए पुरानी आदतें बदलिये और विकास की रौनक देखिये। विकास के खिलाफ मत बोलिये, चुप रहिए। ❑

कश्मीर

जिला विकास परिषद चुनाव परिणामों के मायने

❑ सुशील कुमार

धारा 370 को हटाये जाने के बाद प्रथम बार जम्मू कश्मीर में जिला विकास परिषद के चुनाव हुए. इस चुनाव का ऐतिहासिक महत्व है. भाजपा और विपक्ष यानी 'गुपकार गठबंधन' दोनों नतीजों को अपने-अपने ढंग से विश्लेषित कर अपनी जीत का दावा कर रहे हैं. दलों से अलग देश की जनता को अपना नजरिया साफ कर लेने की जरूरत है. हमें निम्नलिखित तथ्यों को ठीक से समझ लेना चाहिए.

1. वर्तमान जम्मू कश्मीर केन्द्र शासित राज्य के दो भाग हैं—क.जम्मू और ख. कश्मीर घाटी. आबादी और राजनीति के हिसाब से दोनों का स्वरूप बिलकुल भिन्न है. जम्मू हिन्दू बहुल है, जहां भाजपा का प्रभाव अधिक है और कश्मीर घाटी मुस्लिम बहुल है, जहां अन्य विरोधी दलों का प्रभाव अधिक है.
2. पूरे राज्य के चुनाव में गुपकार गठबंधन की 112 सीटों पर और भाजपा की 74 सीटों पर जीत हुई. शेष सीटों पर कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार और निर्दलीय लोग चुन कर आये.
3. कुल 20 जिलों में से 13 जिलों में गुपकार गठबंधन जीता और 6 जिलों में भाजपा को जीत मिली. एक जिला निर्दलीय लोगों के जिम्मे जा सकता है या फिर यहां गुपकार के समर्थन से परिषद का गठन होगा.
4. भाजपा कुल मतों के आधार पर अपनी जीत का दावा ठोंक रही है. साथ ही सबसे बड़ा दल होने को भी अपनी जीत मान रही है, जिसका भारत की चुनाव पद्धति में कोई अर्थ नहीं है. जैसे बिहार विधान सभा के पिछले चुनाव में महागठबंधन को राजग गठबंधन से मात्र 3% मत कम मिले और सबसे बड़ी पार्टी राजद रही. लेकिन राजग गठबंधन को कुल सीट में बहुमत मिला. तो क्या हम इसे महागठबंधन की जीत मान सकते हैं?
5. सर्वाधिक मतों को भी समझना जरूरी है. भाजपा को जम्मू क्षेत्र में ज्यादा सीटें मिली हैं और गुपकार गठबंधन को कश्मीर घाटी में. जम्मू क्षेत्र में मतदान 70% से भी अधिक हुआ, जबकि घाटी में मतदान मात्र 32% हुआ. घाटी के कई जिलों में तो मात्र 7 से 14 प्रतिशत ही वोट पड़े.
6. हिन्दू बहुल जम्मू क्षेत्र में गुपकार गठबंधन को 37 सीटें मिलीं और मुस्लिम बहुल कश्मीर घाटी में भाजपा को 3 सीटें मिलीं.
7. कश्मीर घाटी में गुपकार गठबंधन को प्रचार नहीं करने दिया गया. महबूबा मुफ्ती, फारूख़ अब्दुल्ला और उमर अब्दुल्ला चुनाव प्रचार के लिए नहीं निकल पाये, जबकि भाजपा के केन्द्रीय मंत्रियों और बड़े-बड़े नेताओं ने घाटी में धुआंधार प्रचार किया. वित्त राज्य मंत्री तो घाटी में कैंप करके बैठे रहे. बिना प्रचार के ही घाटी और जम्मू के मतदाताओं ने गठबंधन को इतनी बड़ी संख्या में जीत दिला दी.
8. भाजपा दावा कर रही है कि यह चुनाव परिणाम पिछले साल धारा 370 के हटाये जाने के समर्थन का परिचायक है. यह दावा घाटी में 3 सीट जीतने और कुल मत ज्यादा प्राप्त होने के आधार पर किया जा रहा है.
9. जम्मू कश्मीर के पिछले पंचायती चुनाव का कुछ क्षेत्रीय दलों ने बहिष्कार किया था. भाजपा को उम्मीद थी कि इस बार भी क्षेत्रीय दल बहिष्कार करेंगे और जिला विकास परिषद पर इनकी एकछत्र जीत हो जायेगी. अगर ऐसा होता तो भाजपा को देश और दुनिया भर में यह कहने का मौका मिलता कि कश्मीर के लोगों ने धारा 370 को हटाये जाने के फैसले पर मुहर लगा दी है. लेकिन क्षेत्रीय दलों ने भाजपा की इस रणनीति को समझते हुए चुनाव में भाग लेने का फैसला कर लिया और गठबंधन बनाया. 'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे' वाली कहावत चरितार्थ हुई. भाजपा नेताओं ने बाजी हाथ से निकलते देखकर गुपकार गठबंधन को 'गुपकार गैंग' कहकर संसदीय मर्यादा को भी भंग कर दिया.
10. बिना चुनाव प्रचार के धारा 370 हटाये जाने का विरोध करने वालों की जीत का स्पष्ट अर्थ है कि कश्मीर की जनता ने (जिन्होंने वोट दिया) धारा 370 को हटाये जाने और कश्मीर राज्य को बांटकर दो केन्द्र शासित राज्य बनाने के केन्द्र सरकार के फैसले के खिलाफ अपना मत दिया है.
11. केन्द्र शासित प्रदेश होने के बावजूद विभाजित जम्मू कश्मीर में विधान सभा का प्रावधान है, इसका भी चुनाव संभवतः शीघ्र होने वाला था. पर इस चुनाव नतीजे के बाद शायद सत्ताधारी भाजपा सरकार विधान सभा का चुनाव टाल देगी.
12. इतने तनाव और विरोध के बावजूद आठ चरणों में चुनावों का बिना किसी बड़ी हिंसक घटना के सम्पन्न हो जाना एक बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिये. इसके अपने निहितार्थ भी हैं—

    (क) जम्मू कश्मीर की जनता आज भी अपने को भारत का हिस्सा मानती है.

    (ख) वह धारा 370 को हटाये जाने का समर्थन नहीं करती, इसी कारण इस चुनाव को शांतिपूर्वक सम्पन्न होने दिया और गठबंधन को जीत दिला कर अपना विरोध भी दर्ज करा दिया. ❑

गणतंत्र दिवस पर ध्वजारोहण

गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, जोधपुर में गणतंत्र दिवस के अवसर पर ध्वजारोहण कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ.संतोष छापर ने ध्वजारोहण किया, राष्ट्रगान के पश्चात् कार्यकर्ताओं ने नेमिचंद जैन भावुक को पुष्पांजलि अर्पित की व मुख्य अतिथि को गांधी डायरी भेंट कर उनका स्वागत किया। कार्यक्रम में संयुक्त सचिव धर्मेश रूटिया, आजीवन सदस्य अशोक चौधरी, अम्बालाल जेदिया, सरोज रूटिया, कमलेश सोनी, मोहन महतो, जयपाल सिंह सहित अन्य कार्यकर्ताओं ने भागीदारी निभाई। इसी तरह गांधी स्टडी सर्कल द्वारा जोधपुर के शहर व ग्रामीण क्षेत्र में प्रातः श्रमदान किया गया तथा संविधान की उद्देशिका व मूल कर्तव्यों का सामूहिक वाचन व उन पर चर्चा का आयोजन किया गया। शाम को सार्वजनिक स्थलों पर दीपदान किया गया, जिसमें सर्वोदय मित्र राधिका, बाबूलाल, नारायण राम, बुद्धि पटेल, भँवरा राम, गणपत सहित अन्य कार्यकर्ताओं की भागीदारी उत्साहवर्द्धक रही। **–अशोक चौधरी**

कृषि कानूनों के विरोध में प्रदर्शन व विशाल रैली

विनाशकारी तीन कृषि कानूनों के खिलाफ देश भर में चल रहे किसान आंदोलन के साथ एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए किसान आंदोलन एकजुटता मंच, जमशेदपुर की ओर से साकची गोलचक्कर में प्रदर्शन किया गया. इसमें जमशेदपुर के अलावा पूर्वी सिंहभूम जिले के विभिन्न प्रखंडों से भारी संख्या में किसान शामिल हुए.

वक्ताओं ने अविलंब तीनों कृषि कानूनों को रद्द करने व एमएसपी की कानूनी गारंटी प्रदान करने की मांग रखी। उन्होंने आगे कहा कि लंबे समय से तमाम तकलीफें सहकर भी दिल्ली की तीन सीमाओं पर बैठे हुए किसानों की मांगों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। वक्ताओं ने कहा कि देश भर में किसान आंदोलन चलेगा, झारखंड वासी भी इस आंदोलन के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते रहेंगे. जब कोई प्राकृतिक आपदा आती है, तो सबसे ज्यादा नुकसान गरीबों का ही होता है। मोदी सरकार ने जो मानव निर्मित आपदा किसानों के लिए खड़ी की है, इसका सबसे अधिक खामियाजा गरीब और पिछड़ा राज्य होने के नाते झारखंड वासियों को ही भुगतना पड़ेगा, इसीलिए संपूर्ण झारखंड वासी आज किसान आंदोलन के साथ हैं और अंत तक साथ रहेंगे. **-अरविन्द अंजुम**

गांधी की पुण्यतिथि पर व्याख्यानमाला

गांधी शहीदी दिवस पर सर्वोदय मण्डल उन्नाव द्वारा 'क्या गांधी को भुला देना चाहिए' नामक विषय पर आयोजित 'प्रतियोगात्मक व्याख्यान माला' कार्यक्रम चौधरी खजान सिंह महाविद्यालय उन्नाव में पूर्व प्राचार्य डा. राम नरेश यादव की अध्यक्षता और रघुराज सिंह 'मगन' के संचालन में सम्पन्न हुआ. इस कार्यक्रम में पाँच विद्यालयों के बच्चों ने भाग लिया और अपने विचार व्यक्त किए. संस्था के अध्यक्ष नसीर अहमद और प्रसिद्ध गांधीवादी राम शंकर भाई ने जज की भूमिका का निर्वहन किया. व्याख्यान माला में क़रीब नब्बे बच्चे शामिल हुए.

इस अवसर पर संस्था के पदाधिकारी सुशील मिश्रा, सीताराम गुप्ता, संजीव श्रीवास्तव, राम सजीवन यादव, पुत्तनलाल पाल, अनुपम, मुकेश कुमार यादव, अखिलेश तिवारी, रमेश यादव, आनंद कुमार, दिनेश प्रियमन, आलोक, रामकुमार, रमेश कुमार गौतम, शोभा महेश तथा रघुनन्दन आदि मौजूद रहे.

जूनियर और सीनियर दोनों समूहों के पाँच-पाँच विजयी बच्चों को ट्राफ़ी, प्रशस्ति पत्र तथा साहित्य देकर सम्मानित किया गया. इसके अतिरिक्त अन्य सहभागी बच्चों को भी प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया गया.

–रघुराज सिंह 'मगन'

बोकारो में गाधी पुण्यतिथि

31 जनवरी 2021 को बोकारो कर्मचारी पंचायत के कार्यालय पर सर्वोदय मण्डल बोकारो की ओर से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर एक परिचर्चा का आयोजन हुआ। इस परिचर्चा की अध्यक्षता सर्वोदय मण्डल बोकारो जिला के संयोजक अदीप कुमार ने की। इस परिचर्चा में विभिन्न संगठनों के कार्यकर्ताओं ने महात्मा गांधी द्वारा किए गए कार्यों पर प्रकाश डाला। एक खास विचारधारा के लोगों द्वारा महात्मा गांधी के बारे में गलत बातें प्रचार करके युवाओं को गुमराह करने वालों की भर्त्सना की गई। सभी ने तय किया कि छोटे-छोटे कार्यक्रमों द्वारा गांधी जी के बारे में सही जानकारी दी जायेगी। किसानों के आन्दोलन का समर्थन किया गया। परिचर्चा में हिस्सा लेने वालों में प्रमुख थे सर्वोदय मण्डल के अदीप कुमार, प्रीति रंजन, अमृत बाउरी, मनोज झा, मनोज भारती, रामाकांत वर्मा, राजेश, महावीर महतो और बलविन्दर। आर.एन सिंह, संजय डे और समाजिक कार्यकर्ता चन्द्रदीप भी कार्यक्रम में शामिल हुए। **–राजीव भूषण सहाय**

भुइयांडीह में गांधी के शहादत दिवस पर संगोष्ठी

महात्मा गांधी शहादत दिवस के अवसर पर भुइयांडीह में एक संगोष्ठी आयोजित की गयी, महात्मा गांधी की तस्वीर पर माल्यार्पण के बाद कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम में जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी और छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के अलावा दर्जनों लोग शामिल हुए। जसवा के प्रांतीय सहसंयोजक कुमार दिलीप ने कहा कि देश में बंधुत्व, एकता, अखंडता और संप्रभुता बनाये रखने के लिए गांधी के विचारों को मानना होगा। जसवा के वरिष्ठ साथी अरविंद अंजुम ने कहा कि गांधी व्यक्ति नहीं, विचार थे। समाजसेवी राधे यादव ने कहा कि गांधी ने सत्य और अहिंसा के बल पर देश को आजाद कराया। कार्यक्रम का संचालन जगत एवं धन्यवाद ज्ञापन अमरेन्द्र कुमार ने किया।

–अमरेन्द्र कुमार

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

दो कविताएं

खाऩाबदोश

❑ पुनीत शर्मा

मैं पाकिस्तान में सताया गया हिंदू हूँ।
मै हिंदुस्तान में दबाया गया मुस्लिम हूँ।
मैं इज़रायल का मारा हुआ फ़िलिस्तीनी हूँ।
मै जर्मनी में कत्ल हुआ यहूदी हूँ।
मै इराक का जलाया हुआ कुवैती हूँ।
मै चीन द्वारा कुचला गया तिब्बती हूँ।
मै अमेरिका में घुटता हुआ नीग्रो हूँ।
मै आइसिस से प्रताड़ित यज़ीदी हूँ।

मै तुर्कों के हाथों छलनी अर्मेनियाई हूँ।
मै पूर्वी पाकिस्तान में जिबह हुआ बंगाली हूँ।
मै हुतू के हाथों उजाड़ा गया तुत्सी हूँ।
मै नानचिंग में कत्ल किया गया चाइनीज़ हूँ।
मै मध्य अफ्रीका में मक़तूल ईसाई हूँ।
मै दार्फुर में दफ़न ग़ैर अरबी हूँ।

मै अशोक से हारा कलिंगी हूँ।
मै रशिया से त्रस्त सीरियन हूँ,
पोलिश हूँ, हंगेरियन हूँ, यूक्रेनी हूँ।
मै अकबर से परास्त मेवाड़ी हूँ।
मै ब्रिटेन के हाथों लुटा एशियाई हूँ, ।
अफ्रीकी हूँ, ऑस्ट्रेलियाई हूँ,
उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकी हूँ।

मै अमेरिका के हथियारों से
तबाह किया गया इराकी हूँ,
वियतनामी हूँ, लीबियन हूँ, अफ़ग़ानिस्तानी हूँ,
लगभग 70 नागरिकताओं की जलती हुई
कहानी हूँ।

मै म्यांमार से भगाया गया रोहिंग्या हूँ।
मै श्रीलंका से मिटाया गया तमिल हूँ।
मै चौरासी का सिख हूँ।
मै भारत के जंगलों से उजाड़ा गया
आदिवासी हूँ।
मै अपनी धरती पर कैद कश्मीरी हूँ।
मै कश्मीर से बेघर किया गया कश्मीरी
पंडित हूँ।
मै असम का बंगाली हूँ।
मै ख़ुद के देश में रंगभेद झेलता
पूर्वोत्तर का वासी हूँ।

मै पितृसत्ता से जान बचाती हुई लड़की हूँ।
मै परिवार से निकाला हुआ समलैंगिक हूँ।
मै शोर में दबाया गया सवाल हूँ।
मै वेदों से बहिष्कृत एक जाति हूँ।
मै सामाजिक सम्मान के लिए मारा गया
प्रेमी हूँ।
मै धर्मांधों से धमकाया गया नास्तिक हूँ।
मै भीड़ से बाहर धकेली गयी चेतना हूँ।
मै तर्कहीनों से सहमा हुआ तर्कवादी हूँ।

मै बाज़ार के बीच एक ग़ैर बिकाऊ व्यक्ति हूँ।
मै राष्ट्रीयता में खोयी हुई आँचलिकता हूँ।
मै प्रचलित सुंदरता में अप्रचलित चेहरा हूँ।
मै मुख्यधारा से नष्ट की गई मौलिकता हूँ।

मै कभी किसी गाँव का, कभी किसी राज्य का,
कभी किसी देश का, कभी किसी समाज का,
कभी किसी संस्था का,
तो कभी पूरी दुनिया का अल्पसंख्यक हूँ।
मै बहुसंख्यकों को दिखाया गया खतरा हूँ।
मै लुटेरी सत्ता का सबसे आसान मोहरा हूँ।
और मै जानता हूँ कि ये सब हँसेंगे,
अगर मै खुद को निर्दोष कहूँगा
तो फिर मेरी धरती कौन-सी है?
मेरा देश किधर है?
मेरा घर कहाँ है?
क्या मै इस पृथ्वी पर हमेशा
खानाबदोश रहूँगा? ❑

गांधी इनके मारे नहीं मरेंगे

❑ शिव कुमार पराग

इनके मारे नहीं मरेंगे,
गांधी फिर-फिर जी उठेंगे।

नफरत के ठेकेदारों से,
हिंसा के पैरोकारों से।
कह दो, गांधी डटे रहेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे।

ये जितना भी जोर लगा लें,
दिल-दिमाग में विष फैला दें।
गांधी अपना काम करेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे।

आज आम जन हक्का-बक्का,
लगा है दिल को गहरा धक्का,
गांधी जन की पीर हरेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे।

दृष्टि नहीं ली, चश्मा पकड़ा,
जहर बुझा मन अकड़ा-अकड़ा।
गांधी इनसे नहीं सधेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे।

भगवा दल कितनो दुत्कारे,
साध्वी कितनो गोली मारे।
गांधी टारे नहीं टरेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे।

भीतर लिए घृणा की आंधी,
राजघाट पर गांधी-गांधी।
गांधी को, ये क्या बूझेंगे!
इनके मारे नहीं मरेंगे।

मन के भीतर रहने वाले,
गांधी, कहाँ हैं मरने वाले!
गांधी और-और फैलेंगे,
इनके मारे नहीं मरेंगे। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार